कृषि स्ट्रैस पत्रिका

2018

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान

ICAR-National Institute of Abiotic Stress Management

(समतुल्य विश्वविद्यालय/Deemed to be University)

मालेगांव, बारामती – 413 115, पुणे, महाराष्ट्र, भारत

Malegaon, Baramati - 413 115, Pune, Maharashtra, India

An ISO 9001:2015 Certified Institute

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
कृषि स्ट्रैस पत्रिका
(2018)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
(समतुल्य विश्वविद्यालय)
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
मालेगाँव, बारामती - 413 115, पुणे, महाराष्ट्र, भारत

भाकृअनुप
ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य–श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पाठ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।

राअस्ट्रैप्रसं
NIASM

राअस्ट्रैप्रसं
NIASM

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
कृषि स्ट्रैस पत्रिका
(अंक-1, 2018)

प्रकाशक : **प्रो नरेंद्र प्रताप सिंह**
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
मालेगाँव, बारामती–413 115, पुणे, महाराष्ट्र, भारत
फोन: (02112) 254057, 254058. फैक्स: (02112) 254056
ईमेल: director.niasm@icar.gov.in
वेबसाइट: www.niam.res.in

उधरण : **कृषि स्ट्रैस पत्रिका, अंक-1, 2018**
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
मालेगाँव, बारामती–413 115, पुणे, महाराष्ट्र

प्रधान संपादक : **प्रो नरेंद्र प्रताप सिंह**

संपादक : अजय कुमार सिंह
राम लाल चौधरी
योगेश्वर सिंह
महेश कुमार
नीरज कुमार
परितोष कुमार

छायाचित्र एवं रेखांकन : प्रवीण मोरे, प्रविण विलास माने

आवरण : राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान का वास्तविक परिदृश्य

© सर्वाधिकार सुरक्षित

गजेन्द्र सिंह शेखावत
GAJENDRA SINGH SHEKHAWAT

कृषि एवं किसान कल्याण राज्य मंत्री
भारत सरकार

Minister of State for Agriculture & Farmers Welfare
Government of India

संदेश

यह मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती 'कृषि स्ट्रैस पत्रिका' का प्रथम अंक प्रकाशित कर रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि व कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर है। देश के कृषक समुदाय के सामने जलवायु परिवर्तन के कारण विभिन्न समस्या उत्पन्न हुई है। इन्ही समस्याओं को ध्यान में रखकर कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के साथ ही पर्यावरणीय सतुलन बनाए रखने हेतु भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान के वैज्ञानिक नई तकनीक विकसित कर रहे हैं।

इस पत्रिका में कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों जैसे फसल, डेयरी, पशुपालन, मत्स्यपालन आदि विषयों पर महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है। जलवायु मे बदलाव के कारण सूखा, ओलावृष्टि, बाढ़, आम्लीय वर्षा जैसे विभिन्न अजैविक स्ट्रैस का कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अजैविक स्ट्रैस के प्रबंधन करने हेतु इस पत्रिका में वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई विभिन्न तकनीकों एवं गतिविधियों का समुचित संकलन किया गया है।

मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका किसान भाइयों के कृषि से संबन्धित समस्याओं का उचित समाधान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इसके साथ ही इस पत्रिका से किसान, कृषि वैज्ञानिक एवं सामान्य लोग भी लाभान्वित होंगे। मैं इस ज्ञानवर्धक कृषि स्ट्रैस पत्रिका का प्रकाशन करने के लिए संस्थान के निदेशक एवं सम्पादकिय मण्डल की सराहना करता हूं तथा शुभकामनाएं देता हूं।

शुभकामनाओं सहित।

(गजेन्द्र सिंह शेखावत)

परशोत्तम रूपाला
Parshottam Rupala

राज्य मंत्री
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
और पंचायती राज मंत्रालय
भारत सरकार
Minister of State
Ministry of Agriculture and Farmers Welfare
Ministry of Panchayati Raj
Government of India

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित किया जा रहा है। राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान का उदेश्य जलवायु परिवर्तन के बदलाव से फसल, पशु, मछलियों, मृदा पर होने वाले प्रतिकूल प्रभाव पर अनुसंधान करना और उसके प्रबंधन हेतु गतिविधियां एवं तकनीक विकसित करना है।

इस पत्रिका में जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कैसे कम किया जाए तथा उसका समुचित प्रबंधन हेतु गतिविधियाँ संकलित की गई हैं। मुझे विश्वास है कि इस पत्रिका के माध्यम से किसान भाई अपने कृषि से संबन्धित समस्याओं का उचित समाधान करने में सफल होंगे। भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित की जा रही यह सराहनीय कदम है। मैं संस्थान के निदेशक एवं सम्पादकिय मण्डल की सरहाना करता हूं।

मैं इस पत्रिका के प्रकाशन के लिये हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

(परशोत्तम रूपाला)

त्रिलोचन महापात्र, पीएच. डी.
एफ़एनए, एफ़एनएएससी, एफ़एनएएएस
सचिव एवं महानिदेशक
TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
FNA, FNASc., FNAAS
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग
एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

Government of India
Department of Agriculture Research and Education
and
Indian Council of Agricultural Research
Ministry of Agriculture and Farmers Welfare
Krishi Bhavan, New Delhi 110 001

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न विभिन्न चुनौतियों से निपटने के लिए कृषि पद्धति में बदलाव लाना आवश्यक है। अत: जलवायु सहिष्णु कृषि, पर्यावरणीय गुणवत्ता एवं कृषि उत्पादकता से संबन्धित विषयों पर अनुसंधान एवं नवीनतम तकनीकों का विकास अति आवश्यक है। सूखा स्ट्रैस, मृदीय लवणता, बाढ़, आम्लीय वर्षा, उच्च व अति निम्न तापमान आदि समस्या जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न हुई है और इन सभी का असर पशुपालन, फसल उत्पादन और अंततः जन मानस पर दिख रहा है। इन समस्याओं के समाधान करने के लिए पौधों का फेनोटीपिंग स्क्रीनिंग, जैवप्रौद्योगिकी एवं सस्यविज्ञान के माध्यम से अजैविक स्ट्रैस अवरोधी क़िस्मों का विकास, पशु और मछलियों पर होने वाले तापमान एवं जल प्रभाव कम करने हेतु नई तकनीकों का निर्माण करने में राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान के वैज्ञानिक अहम भूमिका निभा रहे हैं।

मैं कृषि स्ट्रैस पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए संपादक मण्डल को शुभकामनायें देता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका किसानों के लिए उपयोगी साबित होगी एवं लोकप्रियता अर्जित करेगी। अजैविक स्ट्रैस के कारण फसलों, मछलियों एवं पशु–पक्षियों पर होने वाले विपरित प्रभावों पर अनुसंधान एवं उनके समुचित प्रबंधन कि दिशा में राअस्ट्रैप्रसं, बारामती द्वारा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है। 'अधिक फसल – प्रति बूंद जल', कम भूमि – कम समय – अधिक उपज' और 'प्रयोगशाला से खेत तक' जैसे सिद्धान्त को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित उच्च तकनीकों, पौध किस्मों व नवीन अनुसंधानों की जानकारी कृषक समुदाय तक सहज व सरल रूप से पहुँच सके।

त्रि- महापात्र

(त्रिलोचन महापात्र)

श्री बी. प्रधान
Shri Bimbadhar Pradhan

अतिरिक्त सचिव एवं वित्तीय सलाहकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार

Additional Secretary & Financial Advisor
Department of Agriculture Research and Education
Indian Council of Agricultural Research
Ministry of Agriculture and Farmers Welfare
Government of India

संदेश

भारत की अर्थव्यवस्था कृषि एवं उससे संबन्धित क्षेत्रों पर आधारित है। जलवायु परिवर्तन के बदलाव से कृषि का उत्पादन तेजी से घट रहा है और इसका परिणाम हमारे कृषि अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, जलवायु के बदलाव से होने वाले मृदीय स्ट्रैस, सूखा स्ट्रैस और वायुमंडलीय स्ट्रैस के प्रबंधन पर अनुसंधान करके नई तकनीक विकसित कर रहा है। इन सभी तकनीकों को किसान भाइयों और सामान्य जनमानस तक पहुचाने हेतु संस्थान द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम अंक प्रकाशित किया जा रहा है, यह एक सराहनीय कदम है।

मुझे आशा नही बल्कि पूर्ण विश्वास है की इस पत्रिका के माध्यम से हमारे किसान भाइयों को जलवायु के बदलाव से होने वाले नुकसान से निपटने में सहायता मिलेगी, साथ ही कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक साबित होगी। संस्थान के निदेशक एवं सम्पादकीय मण्डल का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ और कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

बी. प्रधान

(श्री बी. प्रधान)

डॉ. के. अलगुसुन्दरम
Dr. K. Algusundaram

उप महानिदेशक
(प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार
Deputy Director General
(Natural Resource Management)
Indian Council of Agricultural Research
Ministry of Agriculture and Farmers Welfare
Government of India

संदेश

नैसर्गिक संसाधनों का एकात्मिक उपयोग करना अति आवश्यक है क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन की वजह से फसल, पशु एवं जन मानस पर विपरीत प्रभाव पड रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए किसान भाइयों को वैज्ञानिकों द्वारा विकसित नई तकनीकों को अपनाना होगा जिससे जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभाव को कम किया जा सके।

वर्तमान समय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परक है जिसकी समुचित उपयोग से सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस क्रम में राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती का पिछले 9 वर्षों में अजैविक स्ट्रैस पर तकनीकी विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान से संबंधित तकनीकी एवं व्यवसायिक ज्ञान को जनमानस तक पहुंचने के लिए यह कृषि स्ट्रैस पत्रिका एक सशक्त और प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकता है। इस संदर्भ में मुझे प्रसन्नता हो रही है कि भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका प्रकाशित किया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत प्रकाशन राष्ट्रीय राष्ट्रीय जैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान से संबंधित समुचित ज्ञान को जनमानस तक प्रभावशाली ढंग से पहुंचाने में सफल होगा। मैं संस्थान के निदेशक एवं कृषि स्ट्रैस पत्रिका के सम्पादकीय मण्डल का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ और कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

(डॉ. के. अलगुसुन्दरम)

श्रीमती सीमा चोपड़ा
Smt. Seema Chopra

निदेशक, राजभाषा
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि भवन, नई दिल्ली
Director, Rajbhasha
Indian Council of Agricultural Research
Krishi Bhawan, New Delhi

संदेश

मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे आशा ही नही बल्कि पूर्ण विश्वास है कि इस कृषि स्ट्रैस पत्रिका के माध्यम से कृषि से संबन्धित आवश्यक जानकारी आम आदमी विशेषत: कृषक बंधुओं तक पहुचेगी।

इस पत्रिका में सूखा स्ट्रैस प्रबंधन, मृदीय स्ट्रैस प्रबंधन और वायुमंडलीय स्ट्रैस प्रबंधन से संबन्धित जानकारी तथा गतिविधियों का संकलन किया गया है जो जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं का निवारण करने मे उपयोगी साबित होगी।

मुझे विश्वास है कि कृषि स्ट्रैस पत्रिका कृषक बंधुओं के कल्याण के लिए जलवायु परिवर्तन के प्रबंधन से संबन्धित महत्वपूर्ण गतिविधियों कि जानकारियाँ पहुंचाने मेँ अपना विशेष योगदान देगी। मैं इस पत्रिका के प्रकाशन के लिये हार्दिक शुभकामनाएं देती हूँ।

सीमा चोपड़ा

(सीमा चोपड़ा)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
ICAR-NATIONAL INSTITUTE OF ABIOTIC STRESS MANAGEMENT
(समतुल्य विश्वविद्यालय)(Deemed to University)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग
Indian Council of Agricultural Research, Department of Agricultural Research & Education
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India
मालेगांव, बारामती–413 115, पुणे, महाराष्ट्र, भारत
Malegaon, Baramati – 413 115, Pune, Maharashtra, India

प्रो. नरेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक

संदेश

भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती का उद्देश्य विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली में वर्तमान तथा भविष्य में अजैविक स्ट्रैस का प्रबंधन करने हेतु सुदृढ़ अनुसंधान की सुविधा प्रदान करना है। संस्थान द्वारा विचारणीय प्रमुख विषयों में सूखा, अकस्मात ओलावृष्टि, मृदीय स्ट्रैस, सूक्ष्म सिंचाई से उत्पन्न लवणीकरण आदि शामिल हैं। इसको हासिल करने के लिए संस्थान द्वारा फसलों, पशुओं और मत्स्य में अजैविक स्ट्रैस पर मूलभूत अनुसंधान को तीव्रता प्रदान की गई है।

पिछले कुछ वर्षों में उत्कृष्ट प्रयोगशाला के लिए उपकरणों की खरीद तथा अनुसंधान फार्म विकास हेतु बुनयादी सुविधाओं के विकास के लिए प्रयास किए गए हैं। जल प्रतिरोधी जीनप्रारूपों की पहचान करने के लिए उत्कृष्ट फिनोमिक्स सुविधा को प्रारंभ करना तथा उच्च कोटी का ग्रीनहाउस सुविधा का निर्माण वर्ष की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं।

भाकृअनुप–राअस्ट्रैप्रसं, मालेगाँव, बारामती द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम संस्करण को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यधिक आनंद की अनुभूति हो रही है। इस पत्रिका में वैज्ञानिक लेखों का समावेश किया गया है। इस पत्रिका में कृषि से संबंधित विभिन्न आधुनिक कृषि तकनीकों, सूखा, मृदा एवं जल प्रबंधन और वायुमंडल के बदलते स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। इस पत्रिका में उल्लेखित सभी कृतियाँ लेखकों की अपनी निजी रचना है। इस कृषि स्ट्रैस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य सहज और सरल भाषा में कृषि विषय पर तकनीकी जानकारी किसानों को उपलब्ध कराना है जिससे किसानों की आय में उलेखनीय वृद्धि हो सके।

मैं, इस पत्रिका के संपादक मण्डल को संकलन के लिए सराहना करता हूँ एवं संस्थान की तरफ से कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

(नरेन्द्र प्रताप सिंह)

सम्पादकीय....

भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती द्वारा कृषि स्ट्रैस पत्रिका के प्रथम संस्करण को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष कि अनुभूति हो रही है। हम संस्थान की ओर से सभी लेखकों का धन्यवाद देते हैं जिन्होनें अपने उत्कृष्ट कृतियों के माध्यम से इस पत्रिका को ज्ञानवर्धक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस पत्रिका में किसानों के लिए उपयोगी विभिन्न आधुनिक तकनीकों की महत्वपूर्ण जानकारी का संकलन किया गया है।

कोई भी ज्ञान अर्जित करना हो तो उस ज्ञान का रूपान्तरण अपने मातृभाषा में होना अति आवश्यक है। राजभाषा हिन्दी एक सरल और सहज भाषा है जिससे विज्ञान जैसे कठिन विषय को भी सामान्य जन समुदाय तक पहुचाया जा सकता है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कृषि स्ट्रैस पत्रिका का प्रकाशन राजभाषा हिन्दी में किया जा रहा हैं। इस पत्रिका में विशेष रूप से वैज्ञानिकों के लेख कृषि एवं संबन्धित क्षेत्रों जैसे फसल, बागवानी, पशुपालन, मात्स्यिकी, डेयरी, मुर्गी पालन आदि विषयों पर आधारित हैं। साथ ही संस्थान के कर्मचारियों द्वारा स्वयं रचित काव्य रचनाओं का भी संकलन इस पत्रिका में किया गया है जो सामान्य जन समुदाय को भी आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

हम संस्थान के निदेशक प्रो. नरेन्द्र प्रताप सिंह का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इस पत्रिका के संकलन के लिए हमारा मार्गदर्शन तथा उत्साहवर्धन किया। हम संस्थान व अन्य संस्थानों के सभी रचनाकारों का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अपनी मौलिक व उपयोगी लेखों के माध्यम से इस पत्रिका को रोचक बनाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

हमें विश्वास है कि कृषि स्ट्रैस पत्रिका का प्रथम अंक किसान भाइयों एवं बहनों, वैज्ञानिकों, छात्रों एवं सामान्य जन–मानस के लिये उपयोगी साबित होगी इसी आशा के साथ कृषि स्ट्रैस पत्रिका, प्रथम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पत्रिका को अधिक ज्ञानवर्धक, उपयोगी एवं रोचक बनाने के लिए आपके रचनाओं व सुझावों की सदैव प्रतीक्षा रहेगी।

◆ ◆ ◆

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1.	राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान: एक नजर	नरेंद्र प्रताप सिंह	1
2.	पेड़ी गन्ने की अधिक पैदावार तथा पर्यावरण सुरक्षा के लिये बहुउद्देशीय मशीन	आर एल चौधरी, ए के सिंह, पी एस मिंहास, जी सी वाकचौरे, महेश कुमार, एन पी सिंह	13
3.	पिताहया फल (ड्रैगन फल): पथरीली भूमि एवं शुष्क क्षेत्रों का भावी फसल	योगेश्वर सिंह, धनंजय नांगरे, पी एस कुमार, महेश कुमार, पी बी तावरे, आर के पसाला, एन पी सिंह	16
4.	ओलावृष्टि: फसल एवं बागवानी में क्षति का स्वरूप तथा प्रबंधन की रणनीतियाँ	सुनिल पोतेकर, सांतनु कुमार बल	20
5.	मसाला फसलों में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और उसका प्रबंधन	सी बी हरीशा, राम लाल चौधरी, परितोष कुमार	24
6.	जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव	आराधना कुमारी, संतोष कुमार सिंह	28
7.	फसलों में अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन मे कृषि उपयोगी सूक्ष्म जीवों का योगदान	कमलेश कुमार मीणा, गोरक्ष वाकचौरे, अजय एम सोरटी, उत्कर्ष बिटला, नरेंद्र प्रताप सिंह	33
8.	वर्षा पोषित रबी ज्वार में सूखा प्रबंधन के लिए कृषि की रणनीतियाँ	रंग लाल मीणा, नरेन्द्र प्रताप सिंह, योगेश्वर सिंह, राम लाल चौधरी, महेश कुमार, जगदीश राणे	36
9.	दुग्ध–पशु हेतु ग्रीष्मकालीन चारा व्यवस्थापन	एन पी कुराडे, ए पी गलांडे, ए व्ही निर्मले, एस एस पवार, जगदीश राणे, नरेंद्र प्रताप सिंह	42
10.	जलीय जीवन पर राष्ट्रीय नदीयों के जोड़ने की परियोजना का प्रभाव	मुकेश भेंडारकर	45
11.	जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मशरुम की खेती: कृषि व्यवसाय का एक विकल्प	गोरक्ष वाकचौरे, भास्कर गायकवाड़	51
12.	कार्प मछलीयों की अर्ध–संघन (सेमि–इंटेनसिव) खेती	नीरज कुमार, के के कृष्णनी, परितोष कुमार, एन पी सिंह	54
13.	पेशेवर स्वास्थ्य खतरों, कृषिरत महिलाओं कि कठिन श्रम और उनके प्रबंधन के तरीके	प्रगति किशोर राउत, ज्योति नायक, गायत्री महराना, अतुल चेतन हेम्रम, म्हात्रे चैश	59
14.	कैनोपी तापमान : सूखा सहिष्णुता वाली फसलों के चयन में उपयोगी	महेश कुमार, जगदीश राणे, योगेश्वर सिंह, रामलाल चौधरी, ए के सिंह, एन पी सिंह	63

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
15.	जैव प्रौद्योगिकी तकनीक का अजैव प्रतिकूल अवरोधी फसलों के विकास में योगदान	अजय कुमार सिंह, महेश कुमार, जगदीश राणे, नरेंद्र प्रताप सिंह	66
16.	स्वच्छ जल की समस्या,शहरी अपशिष्ट जल का कृषि में नियोजित व सुरक्षित उपयोग	परितोष कुमार, नीरज कुमार, सी बी हरीशा, नरेंद्र प्रताप सिंह	68
17.	बंजर चट्टानी बसाल्टिक क्षेत्र का उपजाऊ भूमि में परिवर्तन	योगेश्वर सिंह, धनंजय नांगरे, पी एस कुमार, महेश कुमार, पी बी तावरे, आर के पसाला, एन पी सिंह	73
18.	भारत में बागवानी का यांत्रिकीकरण: चुनौतियाँ एवं उपाय	भास्कर गायकवाड, गोरक्ष वाकचौरे, अजित मगर	80
19.	उथली और चट्टानी मिट्टी में बागों का विकास करने के अभिनव तरीके	डी डी नांगरे, योगेश्वर सिंह, सुरेश कुमार, पी एस मिन्हास, जगदीश राणे, एन पी सिंह	83
20.	अजैविक स्ट्रैस मे मधुमक्खियों का पालन	राजकुमार वी, एन पी सिंह	86
21.	'पादप माईक्रोबायोम' का अध्ययन: सूखा स्ट्रैस प्रबंधन में एक नया आयाम	सतीश कुमार, महेश कुमार, ए के सिंह, जगदीश राणे, एन पी सिंह	90
22.	जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मछली उत्पादन में वृद्धि के तरीके	मनोज ब्राह्मणे, मुकेश भेंडारकर	93
23.	सूखा स्ट्रैस से बचने के उपाय	रूबी साहा, संगिता श्री, पारस नाथ, अनिल कुमार, जनार्दन प्रसाद, पंकज कुमार यादव	97
24.	कविता पाठ: ये संस्थान हमारा है प्रकृति का गहना: अंगूर गांधी के तीन बंदर संकल्प से सिद्धि	प्रवीण भीमराव तावरे	101
	जीने की हसरत	प्रविण विलास माने	102

◆ ◆ ◆

राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान: एक नजर

नरेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान,मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

भारत को 2050 तक 1.6 बिलियन अनुमानित जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु 260 मिलियन टन के वर्तमान अनाज उत्पादन के बजाय 400 मिलियन टन की आवश्यकता होगी। हमें यह उत्पादन जलवायु में होने वाले प्रतिकूल प्रभाओं एवं कृषि योग्य भूमि में बढ़ोतरी के बिना ही प्राप्त करना होगा। शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में अजैविक स्ट्रैस के प्रबंधन हेतु योजनाबद्ध मूलभूत एवं रणनीतिपरक अनुसंधान करने की अवश्यकता है। अन्य पिछड़ा वर्ग आरक्षण पर मोइली निरीक्षण समिति द्वारा अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन पर मानद विश्वविद्यालय स्तर का एक समर्पित अनुसंधान संस्थान स्थापित करने की सिफारिश की गई थी। 11वीं योजना में, गैट संख्या 35, मालेगांव खुर्द, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत मानद विश्वविद्यालय के स्तर के साथ ''राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान'' की स्थापना वाले कृषि मंत्रालय के प्रस्ताव को केन्द्रीय कैबिनेट द्वारा अनुमोदित किया गया। वर्ष 2009 में राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधीन एक संस्थान के तौर पर स्थापित किया गया।

सूखा, तापमान अधिकता, बाढ़, लवणता, अम्लता, खनिज विषाक्तता एवं पोषक तत्वों की अल्पता जैसे अजैविक स्ट्रैस फसलों, पशुधन, मात्स्यिकी एवं अन्य उत्पादों के समक्ष प्रमुख चुनौती के रूप में उभर कर सामने आए हैं। समस्या की जटिलता के मद्देनजर, अनेक देशों द्वारा विशेष अनुसंधान कार्यक्रम पहले ही प्रारंभ कर दिए गए हैं और अजैविक स्ट्रैस के प्रति कृषि के अनुकूलन पर पूर्णतया समर्पित अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की गई है। उष्णकटिबंधीय तथा अर्ध–उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में अधिक कृषि योग्य भूमि होने के कारण यह एक बड़ी चुनौती है। भले ही देश में हाल के वर्षो में बम्पर खाद्यान्न उत्पादन हुआ हो लेकिन दीर्घकालीन अवधि में कृषि व कृषि आधारित उत्पादकता पर जलवाय परिवर्तन एवं अजैविक स्ट्रैस के प्रतिकूल प्रभाव के खतरों की अनदेखी नहीं की जा सकती। इसलिए इस महत्वपूर्ण क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित अनुसंधान करने की अविलम्ब आवश्यकता है और इसीलिए संस्थान द्वारा भारत में खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक निश्चित एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आवश्यकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनेक अनुसंधान संस्थान, राज्य कृषि विश्वविद्यालय तथा अन्य संबंधित विभाग अजैविक स्ट्रैस पर कार्य कर रहे हैं लेकिन समस्या की गंभीरता को देखते हुए उनके प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। इसके अलावा संरक्षित कृषि, सिंचाई प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, रिमोट सेन्सिंग, सूचना प्रौद्योगिकी और पॉलीमर विज्ञान आदि के क्षेत्रों में नये तकनीक विकसित किए गए हैं जिससे फसल सुधार के साथ साथ अजैविक स्ट्रैस के प्रभाव को कम करने और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में नए अवसर प्रदान हुए हैं। इसके बावजूद, कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियां जो कि प्राय: एक से अधिक अजैविक स्ट्रैस से प्रभावित होती हैं, इसलिए प्रौद्योगिकी का उचित संयोजन हासिल करने हेतु समग्र एवं प्रणालीबद्ध युक्ति अथवा दृष्टिकोण विकसित करने की जरूरत है । इसलिए, वैश्विक मानदण्डों वाले और देश के भीतर और बाहर प्रौद्योगिकी प्रगति का लाभ उठाने, संश्लेषित करने, अपनाने और प्रयोग करने वाले उच्च गुणवत्तायुक्त अनुसंधान कार्यक्रमों को प्रारंभ करना अति आवश्यक है।

समस्या की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए, संस्थान की यह एक अतिरिक्त जिम्मेदारी है कि अजैविक स्ट्रैस का सामना करने वाले डोमेन में त्रुटिरहित गुणवत्ता वाले योग्य अनुसंधान कर्मियों और पेशेवरों की संख्या बढ़ायी जाए। इसका उद्देश्य बाधारहित अंतर–विषयी अनुसंधान का समावेश करने तथा आयोजन करने में इन अनुसंधानकर्मियों और पेशेवरों को वांछित कौशल से परिपूर्ण करना है। यह संस्थान जो कि एक मानद विश्वविद्यालय भी है, इस संस्थान की योजना विशिष्टीकृत क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित करने की है जिसकी शिक्षा नियमित कृषि विश्वविद्यालयों में नहीं दी जाती। वर्तमान वर्ष के दौरान, संस्थान में वैज्ञानिक, तकनीकी व प्रशासनिक संवर्ग की संख्या क्रमश: 21, 13 एवं 6 है। अत: संस्थान में कुल स्वीकृत 104 पदों की तुलना में कुल 38 पदों पर ही नियुक्ति हो पायी है। संस्थान द्वारा बहु–विषयी दृष्टिकोण वाले अपने चार स्कूलों के माध्यम से अनुसंधान की शुरूआत की गई है।

संस्थान की भूमिका

संस्थान द्वारा फसलों की गुणवत्ता में सुधार, संसाधन प्रबंधन और नीतिगत विकास के लिए पारम्परिक तकनीकों के साथ साथ आधुनिक तकनीकों को शामिल करते हुए ऐसे स्ट्रैस पर अपना ध्यान केन्द्रित करने पर है जो कि मृदा नमी, मृदा लवणता,

क्षारीयता, अम्लता की अधिकता अथवा अल्पता, जल भराव, जल गुणवत्ता में गिरावट, तापमान में वृद्धि, शीत लहर और बाढ आदि कारण होते हैं। कार्य निष्पादन के लिए संस्थान द्वारा चार स्कूल नामत: वातावरणीय स्ट्रैस प्रबंधन, सूखा स्ट्रैस प्रबंधन, मृदीय स्ट्रैस प्रबंधन और नीति सहयोग अनुसंधान के माध्यम से विषयी मोड में अनुसंधान प्रारंभ किया गया। संस्थान की योजना राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के साथ नेटवर्किंग मोड में दीर्घावधि स्तर पर अजैविक स्ट्रैस का प्रबंधन करने हेतु रणनीतिपरक मानव संसाधन का विकास करना है। अजैविक स्ट्रैस पर ध्यान केन्द्रित करते समय संस्थान द्वारा अनुसंधान कार्यक्रमों के पुनरावृति किए बिना राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली के तहद विद्यमान अनुसंधान एवं विकास को सहायता प्रदान करने का प्रयास किया जाएगा। जीन संरंचना और स्ट्रैस उत्प्रेरित प्रोमोटर जैसे बहु दबावों की सहिष्णुता के लिए अंतर–मध्यस्थ उत्पाद उत्पन्न किया जाएगा जिनका उपयोग अन्य संस्थानों द्वारा फसल, पशुधन और मात्स्यिकी आदि के अंतिम उत्पादों को हासिल करने में किया जाएगा। अनुसंधान परिणामों का प्रभावी कन्वरजेन्स करके एक व्यापक अन्तर्दृष्टि, अनुकूलन तकनीकों, प्रबंधन रणनीतियों और स्वीकार्य नीतियों के माध्यम से जलवायु अनुकूल कृषि प्रणालियों को अपनाकर अजैविक स्ट्रैस द्वारा बाधित कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियों में टिकाऊ आजीविका का निर्माण करना।

अधिदेश

- फसलीय पौधों, पशुधन, मत्स्य एवं मृदा सूक्ष्म जीवों में अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन पर मूलभूत एवं रणनीतिपरक अनुसंधान करना;
- अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन में गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करना तथा उत्कृष्टता के वैश्विक केन्द्र के रूप में उभरना;
- सूचना की भागीदारी और क्षमता निर्माण के लिए अजैविक स्ट्रैस, प्रशमन रणनीतियों तथा स्वीकार्य नीतियों पर सूचना की रिपोजिट्री के रूप में कार्य करना;
- अजैविक तथा जैविक स्ट्रैस कारकों के सम्यक प्रबंधन के लिए सम्पर्क विकसित करना।

उद्देश्य

i) कृषि पर मुख्य अजैविक स्ट्रैस के प्रभावों का आकलन तथा परिमाणन करना और अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन पर सूचना रिपोजिट्री का विकास करना;

ii) अजैविक स्ट्रैस के प्रति सहिष्णुता के लिए नवीन जीनों का इस्तेमाल करते हुए तथा जीन माइनिंग के माध्यम से फसलों, बागवानी, पशुओं, मत्स्य तथा सूक्ष्म जीवों की स्क्रीनिंग तकनीकों का विकास करना और स्ट्रैस सहिष्णु जीनप्ररूप/स्ट्रेन विकसित करना;

iii) नैनो प्रौद्योगिकी, भू–सूचना प्रणाली आदि जैसे अग्रणी विज्ञान तंत्र का उपयोग करके सूखा, मृदीय तथा वातावरणीय स्ट्रैस के प्रशमन हेतु प्रौद्योगिकी विकसित करना;

iv) अजैविक स्ट्रैस अनुसंधान एवं प्रबंधन में आधुनिक यंत्र एवं तकनीकों के उपयोग पर प्रगत प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण के माध्यम से मानव संसाधन विकसित करना;

v) संस्थानों/संगठनों/राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के साथ सहयोग करते हुए अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन पर नीतिगत सहयोग अनुसंधान का आयोजन करना एवं;

vi) अजैविक स्ट्रैस पर कार्यशील अन्य संगठनों के साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क का अनुकरण करना

रणनीति

संस्थान के विजन और लक्ष्यों को हासिल करने और अनुसंधान प्रयासों की दक्षता एवं प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए अपनाई जाने वाली एक छ: प्वाइंट की षटकोणीय (hexagonal) इंटरलिंक्ड रणनीति तैयार की गई है। संस्थान द्वारा अपने सभी प्रयासों

को अजैविक रूप से दबावग्रस्त पर्यावरण के तहद जलवायु की दृष्टि से टिकाऊ आजीविका हासिल करने की दिशा में केन्द्रित किया जाएगा।

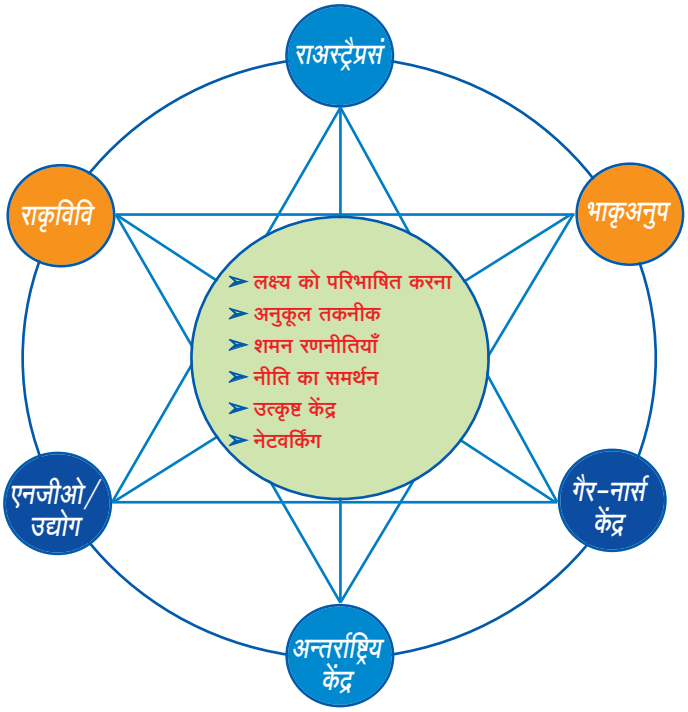

अधिदेश हासिल करने हेतु संस्थान की रणनीति

संस्थान की परिचालन योजना देश के समक्ष मौजूद अजैविक स्ट्रैस पर मूलभूत अनुसंधान, सामरिक मानव संसाधन विकास, और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय केन्द्रों के व्यापक नेटवर्क की भागीदारी के साथ अग्रणी प्रौद्योगिकी का उपयोग करके मजबूत डाटाबेस व सुधारात्मक तकनीकों पर केन्द्रित किया जाएगा। संस्थान की व्यापक रणनीति के तहत कृषि क्षेत्र को प्रभावित करने वाले विभिन्न अजैविक स्ट्रैस के परिमाण और आवृति को प्राथमिकता के तौर पर अभिलक्षित करना संस्थान की व्यापक योजना है। इससे मूलभूत एवं रणनीतिपरक अनुसंधान के लिए एक तर्कसंगतता प्रदान होगी जिसका उद्देश्य फसलों, बागवानी, पशुधन और मात्स्यिकी में कृषि पारिस्थितिकी विशेष स्ट्रैस दूर करने के उपायों तथा अनुकूलन प्रौद्योगिकियां प्रदान करना है। इसे अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन में उत्कृष्टता केन्द्र के लिए विश्व स्तरीय बुनियादी सुविधाएं और जरूरी वैज्ञानिक संसाधन के विकास से किया जाएगा।

सतत कृषि के लिए उत्कृष्ट संसाधन का उपयोग प्रभावी तरीके से करने के उपायों में एक सहक्रियाशील रीति में उपलब्ध निवेशों और उनके उपयोग का आकलन करना, नुकसान को रोकना, लाभ को अधिकतम करने हेतु प्रतिस्पर्धी मांगों के बीच निवेशों का न्यायोचित आवंटन करना और स्थान विशेष प्रौद्योगिकियों का विकास करना शामिल है। भाकृअनुप – राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान एक मानद विश्वविद्यालय होने के नाते और अपने रणनीतिपरक स्थान के कारण, न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर भी अजैविक स्ट्रैस अनुसंधान पर एक 'उत्कृष्टता केन्द्र' स्थापित होने की दिशा में एक आदर्श संस्थान है। सभी प्रकार के अजैविक स्ट्रैस जैसे सूखा, मृदीय और वातावरणीय स्ट्रैस के प्रति आंकड़ो का संग्रह और जैविक स्ट्रैस व अनुसंधान के समन्वयन हेतु यह संस्थान एक अग्रणी केंद्र के रूप में स्थापित होगा। जलवायु परिवर्तन के प्रति संयुक्त अनुकूलन एवं प्रबंधन जिसे व्यापक क्षेत्र में व जल संसाधन प्रबंधन समाधानों के बीच वर्तमान में लागू किया जा सके ताकि अल्पावधि में अनुकूलन लाभ और दीर्घावधि में समाधान हेतु रणनीति बनाई जा सके।

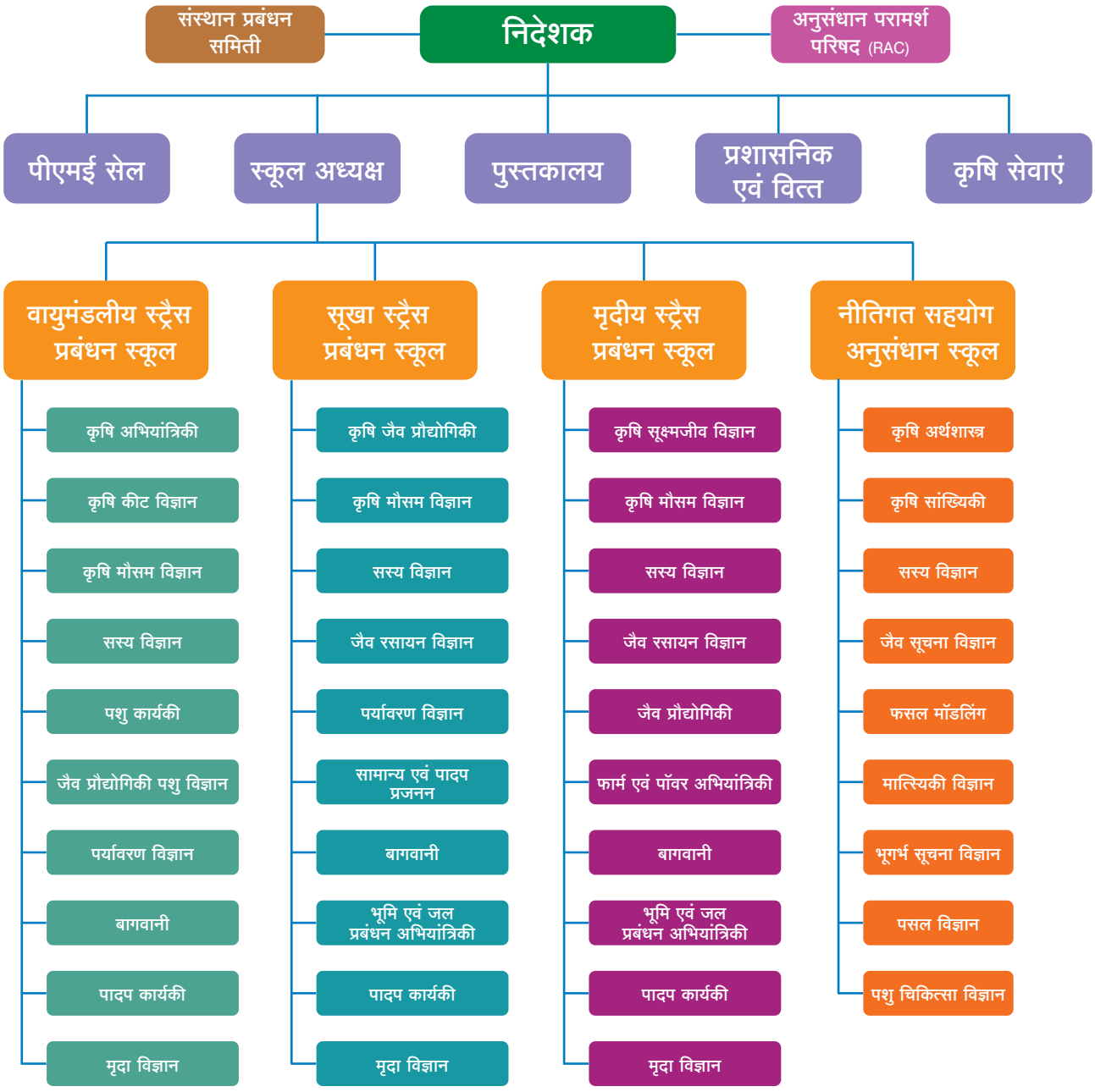

संस्थान की संगठनात्मक संरचना

संस्थान के अनुसंधान कार्यक्रम

वायुमंडलीय स्ट्रैस प्रबंधन स्कूल

- खाद्य एवं बागवानी फसलों, पशुधन और मात्स्यिकी पर दीर्घीकृत CO_2 ताप/शीत आदि के प्रभाव का परिमाणन करना;
- वातावरणीय ब्राउन क्लाउड के लिए अनुकूलनीय एवं प्रशमन रणनीतियां;
- 'ऑमिक्स' युक्ति का उपयोग करके माल्युकूलर आधारित अनुकूलन की व्याख्या करना;
- प्रतिकूल मौसम घटनाओं के प्रबंधन हेतु निर्णय समर्थित प्रणाली (DSS) का विकास करना

सूखा स्ट्रैस प्रबंधन स्कूल

- स्ट्रैस उत्तरदायी जीन के कार्यिकी संक्रमण, सिग्नल ट्रांसडक्शन और विनियमन पर अन्वेषण;
- स्ट्रैस सहिष्णुता से जुड़े गुणों और जीनों के लिए स्क्रीनिंग प्रोटोकॉल का विकास;
- जीनोमिक्स, फिनोमिक्स, प्रोटिओमिक्स तथा मेटाबोलोमिक्स टूल्स का उपयोग;
- स्ट्रैस कम करने के लिए पादप–इंडो/राइजो जीवाणु पारस्परिकता

मृदीय स्ट्रैस प्रबंधन स्कूल

- लवणता, पोषक तत्व अल्पता, प्रदूषकों तथा एनोक्सिया आदि के तहत सहिष्णुता एवं ऑयन समस्थिति का आनुवंशिक एवं आणविक आधार;
- मृदा मेटा जीनोमिक्स, नैनो प्रौद्योगिकी एवं प्रणाली जीवविज्ञान का अनुप्रयोग;
- ग्रीनहाउस गैसों के सिंक के रूप में मृदा का आकलन करना;
- स्ट्रैस पर्यावरण के लिए एक अनुकूलनीय टूल्स के रूप में संरक्षित/प्रेसीजन कृषि

नीतिगत सहायता अनुसंधान स्कूल

- अजैविक दबाव के अनुकूलन हेतु तकनीकों को अपनाए जाने को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत अनुसंधान;
- स्ट्रैस प्रबंधन एवं कार्बन ट्रेडिंग के लिए अवसर प्रदान करने वाले नवीन प्रबंधन विकल्पों की डिजाइनिंग

बुनियादी सुविधा विकास संबंधित गतिविधियां

कार्यालय व प्रशासनिक भवन

कार्यालय एवं प्रशासनिक भवन अब पूरी तरह से निर्मित है और इसे पांच खण्डों यथा निदेशक सेल, प्रशासनिक अनुभाग, वातावरणीय, मृदीय, सूखा व नीति विद्यालय में बांटा गया है। इस भवन में पूरी तरह से उपकरणों से युक्त केन्द्रीय प्रयोगशाला है जिसे तीन खण्डों में बांटा गया है, 225 व्यक्तियों के बैठने की क्षमता वाला एक सभागार और सार्वजनिक सम्बोधन प्रणाली युक्त एम्फीथियेटर है। प्रशासनिक भवन में अग्नि शमन यंत्र और अलॉर्म प्रणाली की भी सुविधा है।

निदेशक एवं स्टाफ क्वार्टर

संस्थान के निदेशक के लिए 298 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में टाइप–7 का एक क्वार्टर बनाया गया है। साथ ही 101 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में कर्मचारियों के लिए टाइप–4 के कुल 6 क्वार्टरों का निर्माण किया गया है

निदेशक अवास

स्टाफ क्वार्टर

निरा अतिथि गृह

निरा अतिथि गृह में वाई–फाई कनेक्शन की सुविधा के साथ तीन वीआईपी कक्ष और 18 सामान्य कक्ष हैं। अतिथि गृह का उद्घाटन दिनांक 23 अक्तूबर, 2016 को किया गया।

निरा अतिथि गृह का बाहरी एवं अंदर का दृश्य

हॉस्टल सुविधा

हॉस्टल और डाइनिंग ब्लॉक का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। हॉस्टल भवन के दो ब्लॉकों में कुल 72 कमरे हैं। प्रत्येक कमरे में बाथरूम है और सोलर वाटर हीटर का प्रावधान भी किया गया है। इन हॉस्टल के डाइनिंग ब्लॉक में माड्यूलर कमर्शियल रसोई की सुविधा है और इसमें 70 से अधिक व्यक्तियों के एक साथ बैठने की क्षमता है। अभी इन भवनों में साज–सज्जा एवं अन्य संबंधित कार्य किया जाना शेष है और इन भवनों को पूरी तरह से कार्यशील बनाने हेतु कार्य प्रगति पर है।

छात्रावास भवन

छात्रावास – डायनिंग ब्लॉक

स्कूल भवन

दो स्कूल भवन नामत: सूखा स्ट्रैस प्रबंधन स्कूल और मृदीय स्ट्रैस प्रबंधन स्कूल का निर्माण का कार्य पूरा हो चुका है और अब इनका उपयोग किया जा रहा है। प्रत्येक स्कूल भवन में दो प्रयोगशाला के साथ भण्डार कक्ष, संभागाध्यक्ष के लिए एक कमरा, वैज्ञानिक स्टाफ के लिए 12 कमरे और तकनीकी कर्मचारी के लिए दो कमरे, कक्षा के लिए एक कमरा, एक अध्ययन कक्ष, पैन्ट्री तथा रिकॉर्ड कक्ष की सुविधा है। स्कूल भवन अग्निशमन प्रणाली तथा सीसीटीवी निगरानी प्रणाली से युक्त हैं।

सूखा एवं मृदीय दबाव प्रबंधन के स्कूल भवन

अनुसंधान प्रयोगशाला

रीयल टाइम पीसीआर मशीन, पादप वृद्धि चैम्बर, आटोमेटिड आटोक्लेव, रैफ्रीजरेटिड इनक्यूबेटर शेकर, स्पैक्ट्रोफोटोमीटर, आइस फ़लेकिंग मशीन, रैफ्रीजरेटिड सेंट्रीफ्यूज, बायोसेफ्टी कैबिनेट, CO_2 इनक्यूबेटर, इलैक्ट्रोनिक तराजु, गरम हवा ओवन तथा डीएमएलआर कैमरा आदि उपकरणों को खरीदा गया। यह मौजूदा उपकरण जैसे रीयल टाइम पीसीआर, रैफ्रीजरेटिड सेंट्रीफ्यूज, केमील्यूमिनीसेंस इमेजिंग सिस्टम तथा फ्रीज ड्रायर लायोफिल्जर, हाइपर स्पैक्ट्रो–रेडियोमीटर, एटोमिक एब्जार्प्शन स्पैक्ट्रोफोटोमीटर, प्लांट स्ट्रैस डिवाइस, जेलडल (kjeldahl) डाइजेशन एंड डिस्टीलेशन यूनिट, गल्फ परमीयामीटर किट, जीएलसी सिस्टम, फ्लेम फोटोमीटर, मोटराइज सैम्पलिंग ऑगर, अग्रत प्रकाश–संश्लेषण प्रणाली, आईआर थर्मोमीटर, लाइन क्वान्टम सेंसर एंड लीफ एरिया मीटर, एडी कोवारीऐंस सिस्टम, बोवन रेशो सिस्टम, इंफ्रारेड थर्मल इमेजिंग प्रणाली, रियल टाइम क्लोरोफिल फ्लूरेसेंस सिस्टम आदि उपकरण आदि खरीदे गए। इस प्रकार अब प्रयोगशाला जैव सूक्ष्म कणों के विश्लेषण, पादप फोटोसिस्टम पैरामीटर तथा मृदा लक्षणवर्णन करने में और आरएनए तथा प्रोटीन स्तर पर जीन अभिव्यंजकता को मापने में सक्षम हुई है।

प्रयोगशाला

भाकृअनुप - राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान (ICAR-NIASM) आवासीय परिसर, एमआईडीसी, बारामती

दिनांक 17 मार्च, 2016 को आवासीय क्वार्टरों यथा टाइप VI : 04; टाइप V : 06; टाइप IV : 08; तथा टाइप III : 08 का निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया था। वर्ष 2017–18 में, केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग द्वारा प्रत्येक टाइप के क्वार्टर में एक फ्लैट पूर्ण किया गया। टाइप VI तथा टाइप V क्वार्टर्स बनकर तैयार हैं जिनमें कि पलम्बरिंग, इलैक्ट्रीफिकेशन, जल निकासी तथा साज–सज्जा आदि का कार्य भी शामिल है जबकि टाइप III और टाइप IV क्वार्टरों में कार्य अभी प्रगति पर है। चारदीवारी रोपण तथा बगीचा विकास का कार्य प्रगति पर है। मुख्य प्रवेश द्वार, सड़क, स्ट्रीट लाइट, सब–स्टेशन का निर्माण और हरित क्षेत्र का विकास कार्य प्रगति पर है जिसकी कि सितम्बर, 2018 तक पूरा होने की अपेक्षा है।

टाइप III तथा IV आवासीय परिसर

टाइप V आवासीय परिसर

टाइप VI आवासीय परिसर

केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों, कान्ट्रेक्टर एवं निदेशक, भाकृअनुप – एनआईएएसएम द्वारा स्थल दौरा

प्रयोगात्मक पशुधन शेड

पशुधन शेड का निर्माण कार्य केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग द्वारा वर्ष 2017 में प्रारंभ किया गया था। इसमें 24 मवेशियों और 12 बछड़े–बछड़ीयों को रखने का प्रावधान है। इस शेड में आहार, भूसा कटर के लिए भण्डार तथा प्रयोगशाला की व्यवस्था है। आरसीसी, ईंट लगाने अथवा चिनाई, प्लास्टर, एमएस आदि का कार्य पूरा किया जा चुका है और अंतिम साज–सज्जा का कार्य प्रगति पर है।

पशुधन शेड (बाहरी दृस्य)

पशुधन शेड (आंतरिक दृस्य)

पशुधन अनुसंधान फार्म विकास

भाकृअनुप – राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती में पोल्ट्री, बकरियों और भैंस की विभिन्न देशी नस्लों के आवास के लिए एक सस्ती पशुधन प्रयोगशाला विकसित की गई है। पोल्ट्री इकाई में दो देशी पोल्ट्री नस्लों यथा श्रीनिधि और ग्रामप्रिया को रखा गया है। इनके अण्डे निकटवर्ती किसानों के बीच काफी लोकप्रिय हुए हैं और वे हैचिंग के लिए इनका उपयोग कर रहे हैं। निर्माण किए गए बकरी शेड का उपयोग बकरियों की तीन विभिन्न देशी नस्लों के आवास और स्टॉल फीडिंग के लिए किया जा रहा है। बकरी इकाई को ओस्मानाबादी बकरियों के साथ प्रारंभ किया गया था और अब यहां अनुसंधान प्रयोजना के लिए कोंकण कान्याल तथा संगमनेरी जैसी मूल भारतीय बकरी नस्ल को पाला जा रहा है। भैंस इकाई में चार उच्च गुणवत्ता वाली मुर्राह भैंस तथा उनके बछड़े पाले जा रहे हैं। दूध, अण्डा और बकरियों की बिक्री करके संस्थान द्वारा लगभग 2 लाख रूपये की आय हुई है।

भैंस इकाई का मुक्त गोठा (स्वतंत्र आवास) टाइप में परिवर्तित किया गया।

बकरी फार्म में तीन स्थानीय नस्लों (ओस्मानाबादी, कोंकण कान्याल तथा संगमनेरी) को पाला जा रहा है।

कुक्कुट इकाई में श्रीनिधि तथा ग्रामप्रिया (अहाता पोल्ट्री पैतृक) को पाला जा रहा है।

पादप फिनोमिक्स सुविधा

निक्रा (एनआईसीआरए) कार्यक्रम के तहत संस्थापित पादप फिनोमक्स सुविधा अब पूरी तरह से काम कर रही है। इसका उद्घाटन 23 अक्तूबर, 2016 को किया गया था। 225 गमलों को रखने की क्षमता के साथ पादप फिनोमिक्स सुविधा को विविध तरंग क्षेत्र में पादपों की जानकारी के लिए तीन इमेजिंग प्रणालियों के साथ सुसज्जित किया गया अर्थात पराबैंगनी (आईआर), दृष्टिगत (वीआईएस) तथा निकटस्थ पराबैंगनी (एनआईआर)। प्रणाली में एक पादप को वृद्धि चैम्बर से इमेजिंग कैबिनेट तक लाने और ले जाने के लिए इस सुविधा के तहत पादप को संचालित करने हेतु कन्वेयर बैल्ट प्रणाली का उपयोग किया गया। संपूर्ण सुविधा लेम्ना कंट्रोल साफ्टवेयर द्वारा संचालित कंप्यूटर प्रणाली है।

पादप फिनोमिक्स का बाहरी दृश्य

पादप फिनोमिक्स (इमेजिंग चैमबर)

पादप फिनोमिक्स सुविधा में पादप वृद्धि

ग्रीनहाउस सुविधा

संस्थान में उच्च–तकनीक युक्त चार ग्रीनहाउस का निर्माण किया गया है जिसमें प्रत्येक का क्षेत्रफल 240 वर्ग मीटर है। ग्रीनहाउस में पादप उगाने के लिए कूलिंग पैड प्रणाली तथा अक्षीय एक्जॉस्ट–पंखा प्रणाली के साथ पादप प्लेटफार्म है। इस ग्रीनहाउस में तापमान, प्रकाश अवधि तथा आर्द्रता को नियंत्रित करने का प्रावधान है।

ग्रीनहाउस सुविधा

पुस्तकालय

संस्थान के अनुसंधान तथा अन्य कार्यक्रमों को सुविधा सुलभ कराने में पुस्तकालय की अहम भूमिका होती है। संस्थान के पुस्तकालय में नवीनतम पुस्तकों के रूप में सूचना संग्रहण एवं रिपोजिट्री के लिए तथा अजैविक स्ट्रैस एवं इसके प्रबंधन संबंधी अनुसंधान कार्यो से जुड़े प्रासंगिक अनुसंधान तथा लेखों की समीक्षा तक ऑनलाइन पहुंच जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए अब इसमें सुधार किया गया है। संस्थान के अधिदेश को सफलतापूर्वक हासिल करने के लिए भाकृअनुप– राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान पुस्तकालय में कृषि, पशु पालन तथा मूल विज्ञान विषयों से संबंधित क्षेत्रों की अच्छी पुस्तकों का संग्रहण उपलब्ध है। इस

पुस्तकालय का वैज्ञानिक, तकनीकी कार्मिक, अनुसंधान सहायक, छात्र तथा प्रशिक्षणार्थी नियमित रूप से लाभ उठा रहे हैं। पुस्तकालय द्वारा अपने निर्दिष्ट कार्यकलापों और सेवाओं का सही ढंग से अनुसरण किया जा रहा है। इसमें पुस्तकें प्राप्त करना, साहित्य का आदान–प्रदान, परिचालन, संदर्भ सेवाएं और प्रलेखीकरण शामिल हैं। पुस्तकालय द्वारा संस्थान के प्रकाशनों के साथ–साथ वार्षिक रिपोर्ट को सभी भाकृअनुप संस्थानों/ एनआरएस प्रणाली के राज्य कृषि विश्वविद्यालयों को मेल द्वारा उपलब्ध कराया जाता है। वर्तमान में पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या 2220 है। इसके अलावा दस्तावेज जैसे एनएएएस/ भाकृअनुप संस्थानों के न्यूजलैटर तथा अन्य मुक्त स्रोत वाले लेख भी यहां उपलब्ध हैं। पुस्तकालय को अनेक संस्थानों/संगठनों से 100 से अधिक प्रकाशन प्राप्त हुए हैं जिनमें वार्षिक प्रतिवेदन भी शामिल है। भाकृअनुप– राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान पुस्तकालय आईसीएआर–CeRA। कंसोर्शियम का एक सदस्य है। इस प्रकार सभी वैज्ञानिक और तकनीकी कार्मिक ऑनलाइन जर्नल की उपलब्धता का लाभ उठा रहे हैं। संस्थान के कार्मिकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पुस्तकालय में पुस्तकों/साहित्य के आदान–प्रदान में ऑन–लाइन प्रणाली को कार्यान्वित किया गया है। संस्थान की पहुंच में ब्मत। द्वारा 1174 ई–बुक्स के साथ–साथ 17 ई–बुक श्रृंखला, इंडिया एग्रीस्टेट डेटाबेस उपलब्ध है।

पुस्तकालय

जल-संवर्धन चारा उत्पादन इकाई

संस्थान के पशुधन अनुसंधान फार्म पर एक सस्ती जल–संवर्धन हरा चारा उत्पादन इकाई स्थापित की गई है। इस इकाई द्वारा भैंस इकाई को हरे चारे की आपूर्ति की जाएगी और पुन: इसका उपयोग जल बचत वाले विकल्पों, डेयरी पशुओं व बकरी पालन एवं पोषणिक स्थिति में सुधार के संबंध में अनुसंधान व विकास कार्यों में किया जाएगा। इस 60 ट्रे इकाई की स्ीापना में लागत रूपये 21,000 आई थी। हरे चारे की दैनिक उपज लगभग 48 – 50 किग्रा. थी। इससे भैंस इकाई में चार दुधारू भैंस की चारा जरूरतों को आंशिक तौर पर पूरा किया गया।

जल–संवर्धन हरा चारा उत्पादन इकाई

◆ ◆ ◆

पेड़ी गन्ने की अधिक पैदावार तथा पर्यावरण सुरक्षा के लिये बहुउद्देशीय मशीन

आर एल चौधरी[1], ए के सिंह[2], पी एस मिंहास[1], जी सी वाकचौरे[1], महेश कुमार[1], एन पी सिंह[1]
[1]भाकृअनुप – राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती– 413 115, पुणे, महाराष्ट्र
[2]भाकृअनुप – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ– 226 002, उत्तर प्रदेश

गन्ना, सैकेरम आफिसिनेरम एल. (*Saccharum officinarum* L.), भारत की महत्वपूर्ण नकदी फसल व मिठास का एकमात्र स्रोत है। यह लगभग 7.5 प्रतिशत ग्रामीण आबादी की आजीविका एंव कृषि औद्योगिक अर्थव्यवस्था में भी एक निर्णायक भूमिका निभाता है। एक अनुमान के अनुसार गन्ने की खेती एंव प्रसंस्करण द्वारा देश को प्रति वर्ष लगभग 50,000 करोड़ रूपये का राजस्व मिलता है। लगभग 50 मिलियन गन्ना किसान तथा उनका परिवार अपनी दैनिक जीविका के लिये इस फसल व इस पर आधारित चीनी उद्योग से सीधे जुड़े हुये है। भारत में गन्ना 5.28 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में उगाया जाता है, जिससे लगभग 349 मिलियन टन गन्ने का उत्पादन प्रति वर्ष होता है। वर्तमान में, भारत प्रतिवर्ष औसतन 26 मिलियन टन चीनी का उत्पादन कर रहा हैं लेकिन देश में त्वरित गति से बढ़ रही जनसंख्या की चीनी को मांग को पूरा करने के लिए वर्ष 2030 में लगभग 33 मिलियन टन चीनी की आवश्यकता होगी। अतः तथ्यों को ध्यान में रखते हुये भविष्य मे चीनी की मांग को पूरा करने के लिए गन्ना उत्पादन में वृद्धि की अत्यंत आवश्यकता है।

भारत में प्रतिवर्ष गन्ने के कुल क्षेत्रफल का लगभग 46% क्षेत्र पेड़ी गन्ने की फसल के रूप में लिया जाता है, परन्तु इसकी इसकी औसत उत्पादकता (50 टन प्रति हैक्टर) गन्ने की बावक फसल (85 टन प्रति हैक्टर) की तुलना में सामान्यतया 20–25% कम है। अतः सर्वप्रथम पेड़ी गन्ने की पैदावार मे बढ़ोतरी करना बहुत ही अति–आवश्यक है क्योंकि पेड़ी की फसल बावक फसल की अपेक्षा अधिक चीनी युक्त होने के साथ–साथ पहले पक कर तैयार हो जाती है। इसके अलावा, पेड़ी की फसल उगाने पर खेत की तैयारी तथा बीज व बुआई पर होने वाले खर्च की बचत होने से कुल उत्पादन लागत में कमी के साथ–साथ लाभार्जन में भी बढ़त होती है। इसके अलावा, गन्ना कटाई के उपरांत खेत में ट्रेश (गन्ने की सुखी पत्तीयां) रासायनिक उर्वरकों को डालने तथा अन्य अंतः सस्य क्रियाओं को निष्पादन करने में अड़चने पैदा करने की वजह से ट्रेश को जलानें की प्रथा गन्ने की पेड़ी फसल में एक आम बात है । जहां एक तरफ ट्रेश जलानें से महत्वपूर्ण पोषक तत्वों जैसे कि नत्रजन, गंधक व केल्शियम आदि नष्ट होने के साथ–साथ लाभकारी सूक्ष्मजीवों व कार्बन पदार्थ की भी भारी मात्रा में कमी आती है। वहीं दूसरी ओर ग्रीनहाउस गैसो जैसे कि मीथेन, कार्बन डाइऑक्साइड व नाइट्रस ऑक्साइड इत्यादि का भी उत्सर्जन होता है ट्रेश को खेत में डालने पर यह मृदा की गुणवत्ता में सुधार करने के साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किसान, उर्वरकों को भूमि की सतह पर डालने के लिए बाध्य है क्योंकि उसके पास इसके अलावा और कोई उपयुक्त तकनीक/ मशीन नहीं है। इसके कारण किसान को उर्वरक भी ज्यादा मात्रा में डालना पड़ता है, फलस्वरूप आर्थिक बोझ भी ज्यादा आता है। तथा दूसरी और फसल को भी उचित मात्रा में पोषण नहीं मिल पाता है क्योकि उपयोग मे लायी गई उर्वरक की ज़्यादातर मात्रा ट्रेश के ऊपर ही रह जाती है। इससे उर्वरक कि उपयोग दक्षता में भी कमी के साथ–साथ फसल की पैदावार में भी कमी आती है, तथा इसके अलावा वातावरण भी दूषित होता है।

पेड़ी गन्ने के खेत में जलते हुये गन्ने के फसल अवशेष (ट्रेश)।

पेड़ी गन्ने में कल्लों की संख्या मुख्य फसल की तुलना में सामान्यतया 20–40% कम होती है। तथा जो कल्लें जमीन की सतह से नहीं निकलकर पेड़ी गन्ने के असमतल स्टबलों (ठुठों) से निकलते है उनमें मृत्युदर अधिक होती है, फलस्वरूप पेड़ी गन्ने के कटने के समय कल्लों की संख्या में लगभग 50% तक की कमी आ सकती है जिससे फसल की पैदावर में भारी कमी आती है। गन्ने की पेड़ी फसल में जड़ तंत्र पुराना होने के कारण प्रभावकारी व स्वस्थ पतली जड़ों की संख्या कम तथा उथली होती है जिसके कारण पौधो द्वारा जल व पोषक तत्वों का कम अवशोषण होता है जिससे फसल को पोषक तत्वों की उपयुक्त आपूर्ति नहीं हो पाती, फलस्वरूप पेड़ी गन्ने के की पैदावर में कमी आती है। अतः पेड़ी गन्ने की कम पैदावार के लिए उत्तरदायी इन कारकों तथा अन्य समस्याओं के समाधान हेतु, भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित मशीन को उन्नत बनाया गया है यह बहुउद्देश्यीय मशीन, पेड़ी गन्ने में ठूंठ (स्टबल) छँटाई, रेज्ड बेड की बगल तुड़ाई (ऑफ–बारींग), जड़ कर्तन व ट्रेश आच्छादित खेत में उर्वरकों के जमीनी स्थानन इत्यादि कार्यों को एक साथ करने में सक्षम है। इस बहुउद्देश्यीय मशीनको साधारण व सरल भाषा में इसकी विशेषताओं के कारण सोर्फ उपनाम से जाना जाता है। उपरोक्त लिखित पद्धतियाँ न केवल मृदा स्वास्थ्य, संसाधन उपयोग दक्षता व पेड़ी गन्ने की पैदावार में वृद्धि करने में सहायक है बल्कि पर्यावरण हितकारी भी हैं।

सोर्फ मशीन द्वारा फसल प्रबंधन

सोर्फ मशीन के उपयोग से होने वाले प्रमुख फायदे

- पेड़ी गन्ने की पैदावार बढ़ाने के लिए अति–विशिष्ट फसल प्रबंधन कार्यों का समय पर निष्पादन
- ट्रेश आच्छादित खेत में भी रासायनिक उर्वरकों का जमीनी स्थापन संभव
- स्वस्थ कल्लों की संख्या में वृद्धि तथा किल्लों की मृत्यु–संख्या में कमी
- पेड़ी गन्ने की पैदावार में 30% तक की बढ़ोत्तरी
- प्रति हेक्टेयर 50,000 रु. तक का शुद्ध मुनाफा
- लाभ : लागत अनुपात में 12.6% तक की वृद्धि
- जल की उत्पादकता में 39% तक की बढ़ोत्तरी
- रासायनिक उर्वरक–नत्रजन की उपयोग दक्षता में 13% तक की बढ़ोत्तरी
- जड़ कर्तन से अधिक मात्रा में स्वस्थ जड़ों का विकास होने से यह फसल को अल्प अवधि के सूखे से होने वाले दुष्प्रभावों से बचाने में भी सहायक है

- पर्यावरण हितकारी (रासायनिक उर्वरक–नत्रजन का भूमि में स्थापन करने से अमोनिया उत्सर्जन में कमी, तथा ट्रेश को जलाने से होने वाले वातावरणीय दुष्प्रभावों से भी निजात)

सोर्फ मशीन द्वारा प्रबंधित फसल

सफलता की गाथा

गन्ने की पेड़ी फसल के उचित प्रबंधन में सोर्फ मशीन की उपयोगिता को देखते हुये, इस प्रौद्योगिकी को गन्ना किसानों तक पहुंचाना अति–आवश्यक था। इसलिए, सोर्फ मशीन की विशेषताओं के बारे में किसानो को अवगत कराने तथा इसके उपयोग द्वारा पेड़ी फसल से अधिक पैदावार व मुनाफा कमाने के लिए इस मशीन का बारामती तहसील के अनेकों गावों में 50 से भी अधिक प्रदर्शन किये गये। मशीन के इन प्रदर्शनों से न केवल किसानों को फायदा हुआ बल्कि मशीनरी निर्माताओं को भी रोजगार प्राप्त हुआ, और वो आज इस तरह की मशीने न केवल बाजार में उपलब्ध करवा रहे है बल्कि अच्छा मुनाफा भी कमा रहे हैं।

सोर्फ मशीन का किसानों के खेतों पर प्रदर्शन

◆ ◆ ◆

पिताहया फल (ड्रैगन फल): पथरीली भूमि एवं शुष्क क्षेत्रों का भावी फसल

योगेश्वर सिंह, धनंजय नांगरे, पी एस कुमार, महेश कुमार, पी बी तावरे, आर के पसाला, एन पी सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, बारामती–413115 पुणे, महाराष्ट्र

देश के सकल घरेलू उत्पाद में बागवानी 28 प्रतिशत का योगदान देता है और वर्ष 2012–13 से इसका योगदान अनाज उत्पादन से भी ज्यादा हो गया था। भूमि और जल की उच्च उत्पादकता से छोटे किसानों को उच्च मूल्य के बागानों की ओर मुड़कर विशेषकर जल अभाव व सीमान्त क्षेत्रों में, अपनी जीविका सुनिश्चित करने हेतु सुनहरे अवसर हैं। इसके अतिरिक्त शहरी उपभोक्ता अब पौषणिकता के प्रति जागरूक हैं और नित्य बढ़ती बीमारियों के लिए प्राकृतिक उत्पादों को प्रयोग करने में इच्छुक हैं, जिनमें मधुमेह, ह्रदय रोग तथा अन्य तनावपूर्ण रोग महत्वपूर्ण हैं। अत: यह समय है कि परम्परागत बागानों से हटकर फल के टोकरियों को उन फलों से भर दें जिनसे उपभोक्ताओं की उपचारात्मक मांग पूरी हो सके और जो सूखा सम्भावित क्षेत्र एवं पथरीली जमीन के लिए उपयुक्त हैं। ड्रैगन फल वाणिज्यिक रूप से एक लाभदायक पौधा है जिसमें अद्भुत स्वास्थ्यवर्धक गुण हैं परन्तु भारत के उत्पादकों का ध्यान आकर्षित नहीं कर सका है। ड्रैगन फल का उत्पादन सूखी कृषि पारिस्थितिकीय क्षेत्र वाले देशों जैसे आस्ट्रेलिया, चीन, इजरायल, मलेशिया, निकारगुवा, तायवान एवं वियतनाम में लोकप्रिय है। मृदीय रूप से विवश क्षेत्र विशेषकर दक्षिणी पठार के सूखा सम्भावित क्षेत्रों में इसकी क्षमता को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान ने वर्ष 2013 में इसके वाणिज्यिक उत्पादन हेतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास के लिए अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया, इन खेत परीक्षणों के परिणाम उत्साहवर्धक रहा और रोपण के दूसरे वर्ष से फल लगने लगे, आशा है कि पूर्ण उत्पादन सामर्थ्य पांच वर्षों में प्राप्त हो जाएगा। फल का उच्च खुदरा मूल्य रू 150–250/कि.ग्रा. तथा आसपास के किसानों द्वारा नए बागानों की स्थापना हेतु छोटे पौधों की मांग को देखते हुए यह फसल लाभकारी है। अन्य क्षेत्रों में इसकी उत्पादन प्रौद्योगिकी ज्ञान एवं जागरूकता की कमी को ध्यान में रखते हुए पिताहया फल के बागानों को स्थापित करने हेतु कुछ दिशा निर्देश यहां दिए गए हैं।

वनस्पति एवं आकृति विज्ञान

वनस्पतिक रूप से ड्रैगन फल की तीन किस्में हैं नामत: रेड ड्रैगन संकर फल (*हायलोसेरियस पॉलीरिजस*), गहरा लाल ड्रैगन फल (*एच. केस्टारीसेनसिस*) तथा व्हाइट ड्रैगन फल (*एच. अनडेटस*)। यह एक बारहमासी, तेजी से बढ़ने वाली लता है जिसका त्रिकोणाकार या कभी–कभी चार या पांच तरफा तना होता है। तना मांसलदार, बेल जैसा जिसके अनेक शाखाओं वाले खंड होते हैं। प्रत्येक खंड के तीन लहराने वाले पंख या सींग जैसे मार्जिन वाले रिब्स और 1–3 स्पाइन या कभी कभी स्पाइन नहीं भी होते है। ये वायवीय जड़ों का कार्य करते हैं और चढ़ाई में मददगार हैं। रंध्र (स्टोमेटा) बाहरी त्वचा में छिप जाते हैं और तना ऊतकों में काफी मात्रा में पैरेनकाइमा होता है। चूंकि यह फोटोपीरियड अनुकूल फसल है, अत: पुष्पण सामान्यत: मई से सितंबर के दौरान होता है, जब दिन लम्बे होते हैं। इसमें पुष्पण और फलन दोनों समकालीन हैं जो 6–8 फ्लैशेस में होता है। चूंकि फूल रात के दौरान लगता है अत: चमगादड़, ऑक कीट तथा अन्य निशाचर कीटों के माध्यम से परागण होता है। यह फसल भारत के लिए नई है, अत: फ्रूट सेट की वृद्धि के लिए हाथ के द्वारा परागण लाभदायक है, चूंकि इस प्रजाति में आत्म–संगति कमजोर होता है। अत: निम्न स्तर के फ्रूट सेट से बचने के लिए यह सुझाव की जाती है कि बहु–जीनप्ररूपों को उगाया जाए। यद्यपि, एच.अन्डेटस के मामले में यह समस्या नहीं है, चूंकि यह आत्म–संगति प्रजाति है। इसका फल लंबाकार इपिजियस बेरी और इसके छिलके लाल रंग के होते हैं जिन पर हरे रंग के स्केल्स होते हैं तथा इनमें सफेद, लाल छोटे मुलायम काले बीज होते हैं। अंडाशय (पल्प) और रिसेपटेकल (पील) दोनों से ही फल का विकास होता है। फल के विकास के 25 दिनों के बाद छिलके का रंग हरे से लाल हो जाता है। पुष्पण के लगभग 30 से 35 दिनों तथा फ्रूट सेट के 25–30 दिनों के बाद फलों की तुड़ाई की जा सकती है।

पोषक तत्व संरचना और उपयोग

ड्रैगन फल बहुत ही पौष्टिक तथा इसके अन्य उपयोग भी हैं। सामान्यत: इस फल में खाने योग्य भाग इसका गूदा है जिसे ताजा रूप में कच्चा ही खाया जाता है। पके हुए फल का 70–80 प्रतिशत भाग गूदा होता है। इस फल में अनेक उपचारात्मक गुण हैं, यह कोलोन कैंसर, मधुमेह की रोकथाम करता है तथा विषाक्त पदार्थों, जैसे भारी धातुओं को निष्प्रभावित तथा कोलेस्ट्रोल एवं उच्च रक्तचाप को भी कम करता है। इस फल में भारी मात्रा में विटामिन सी,फ़ास्फ़रोस और कैल्सियम मौजूद है। इन फलों में वसा कम और खनिज अधिक होते हैं जिनका अनुकूलतम ब्रिक्स मान 15–18^{0}ब्रिक्स होता है। बड़े सितारा होटलों, रेस्तराओं में इसे

फ्रूट सलाद के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे अनेक औद्योगिक उत्पादों में प्रसंस्कृत किया जाता है, जैसे जूस, जेम, सिरप, आइसक्रीम, यागहर्ट, जेली, कैंडी, पेस्ट्री इत्यादि। ड्रैगन फल का लाल एवं गुलाबी गूदे का उपयोग प्राकृतिक रंगों के निस्सारण में किया जाता है। इसकी कलियों का उपयोग सूप तैयार करने में या सलाद में मिलाया जाता है।

जलवायु

ड्रैगन फल के लिए उष्ण कटिबंधीय जलवायु उपयुक्त है। इसके लिए अनुकूलतम तापमान 20 से 300 से. है। ड्रैगन फल का मूल उन क्षेत्रों से है जहां पर्याप्त वर्षा (दक्षिणी और मध्य अमेरिका) देती है। पौधे के स्वस्थ विकास के लिए औसतन 500–1500 मि.मी. बरसात अनुकूल है। तथापि, सूखे क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएं सुनिश्चित होने पर इसकी खेती की जा सकती है। अत्यधिक वर्षा से फूल झड़ सकते हैं तथा जल निकासी न होने पर कभी–कभी तना और फल सड़ भी सकते हैं।

पालन पद्धतियां

ड्रैगन फल की व्युत्पति बीज या वनस्पतिक रूप, जैसे कटिंग्स के उपयोग से होती है। परिपक्व तने के 15 से 30 सें.मी. लंबे कटिंग्स का उपयोग किया जाता है ताकि बेहतर पौधे उगाए जा सके और परिपक्व कटिंग्स को कीटो से क्षति कम होती है। रोग रोकथाम (विशेषकर सड़न रोग से) के लिए, कटिंग्स को रोपण से 5–7 दिन पूर्व कवकनाशियों से ठंडे एवं सूखे क्षेत्र में उपचार किया जाता है। नर्सरी में 30–40 दिनों में जड़ निकले कटिंग्स मुख्य खेत में प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। पौधों के लिए पूर्ण सूर्य प्रकाश अनुकूल है अत: रोपण के लिए खुले क्षेत्र उपयुक्त हैं। पौधों के बीच 4×3 मीटर की दूरी हवा के संचरण के लिए पर्याप्त है और रोग प्रकोप के अवसर कम रहते है जबकि कम उपजाऊ वाले सूखे क्षेत्र में सघन रोपण (3×3 मी.) की सिफारिश की जाती है ताकि प्रति यूनिट क्षेत्र की उपज कमी की क्षतिपूर्ति की जा सके। ड्रैगन फल का पौधा ऊपर की ओर चढ़ने वाला एक एपिफाइटिक कैक्टस है, अत: इसे ऊपर की ओर बढ़ने के लिए कांक्रीट, लकड़ी या दीवार का सहारा आवश्यक है। अपरिपक्व तने को कॉलम के साथ बांध दिया जाता है ताकि वायुवीय जड़ों का विकास हो सके। पार्श्व तना को प्रतिबंधित किया जाता है और केवल दो या तीन मुख्य तने को विकसित होने दिया जाता है। चयनित कॉलम टिकाऊ तथा मजबूत होना चाहिए ताकि 100 कि.ग्रा. तक वजन की बेल के बोझ को उठा सके। अत: कांक्रीट या मजबूत लकड़ी के कॉलमों की सिफारिश की जाती है। इसके लिए 100–150 मि.मी. व्यास के 2 मीटर लंबे कॉलम को 40 से.मी. तक जमीन में गाड़ दिया जाता है। भारत के दक्षिणी प्रदेश में मिट्टी की गहराई उथली है वहां भारी पोकलेन मशीनों द्वारा किए गए गड्ढो में कांक्रीट के कॉलम लगाए जाते हैं, चूंकि मशीन से कॉलम के सटीक गड्ढे बनाये जाते है जिससे कॉलमों को आसानी से गाड़ दिया जाता है। स्टील का तार या फ्रेम का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे बेल को क्षति पहुंच सकती है। रोपण से पूर्व ही कॉलम को खड़ा कर दिया जाना चाहिए ताकि बेल इस पर आसानी से चढ़ सके। प्रत्येक कॉलम के निकट चार पौधे लगाए जाने चाहिए। रोपण कार्य सामान्यत: वर्षाकाल में किया जाता है और इसके बाद पौधे को सहारा देने हेतु 50 से.मी. ऊंची मेड़ बनाई जाती है। चूंकि बेल तेजी से बढ़ती हैं अत: जमीन पर गिरने की संभावनाएं अधिक होती हैं। अत: इस समस्या को दूर करने के लिए बेलों को बांधने तथा नियमित रूप से पार्श्व शाखाओं की छटांई आवश्यक परिचालन कार्य है। एक बार बेल कॉलम तक पहुंच जाने पर शाखाओं को मुक्त रूप से बढ़ने दिया जाता है परन्तु तब तक मुख्य बेल को ही बढ़ने दिया जाता है जिसे संरचनात्मक छटाई (प्रूनिंग) कहा जाता है। काटी गई सामग्रियों का उपयोग नई पौध बनाने में किया जा सकता है जिससे अतिरिक्त आय होती है। गुच्छे का घनत्व बढ़ने पर कीट और रोग की समस्या उत्पन्न होती है। इसके निवारण के लिए शाखाओं की संख्या को अवांछित शाखाओं की छटाई के माध्यम से कम करते हुए 30 से 50 के बीच रखना चाहिए जिसे प्रॉडक्शन ट्रेनिंग कहा जाता है। कटाई के उपरांत मुख्य शाखा पर एक या दो गौण शाखाओं वाले 50 मुख्य शाखाओं को रखकर तृतीय और त्रैमासिक शाखाओं को काटकर उन्हें कवक नाशियों से उपचार किया जाता है।

लंबी अवधि तक सूखा पड़ने पर सिंचाई का उपयोग किया जाता है। हालांकि, फूल खिलने से पूर्व की अवधि में सूखापन ही रखा जाता है ताकि अधिक फूल खिल सकें। मृदा की नमी को बनाए रखने हेतु सूक्ष्म सिंचाई उपयोगी होती है। रोपण के दौरान सामान्यत: 10 से 15 कि.ग्रा. गोबर की खाद तथा 100 ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रति पौध की आवश्यकता होती है। प्रथम दो वर्षों में प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 300 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. फास्फोरस एवं पोटाश दिया जाता है। प्रत्येक परिपक्व पौधे को प्रतिवर्ष

540 ग्रा. नाइट्रोजन, 720 ग्रा. फास्फोरस तथा 300 ग्रा. पोटाश दिया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया को कम से कम चार किस्तों में बांटकर तीन माह के अंतराल पर दिया जाता है।

इंटरमीडियट (मध्यम) जोन में पुष्पण अप्रैल–मई माह के दौरान प्रारंभ होता है। रोपण से 6–9 माह पश्चात ड्रैगन फल लगते हैं। इसमें प्रथम वर्ष से ही फल लगने लग जाते हैं जबकि तीसरे वर्ष से संभावित औसत उपज 12 से 15 टन प्रति हे. प्राप्त की जाती है। एक फल का औसत भार 250 से 350 ग्रा. होता है। अतिरिक्त फूलों एवं फलों को छांट दिया जाना चाहिए ताकि फल के अच्छे आमाप एवं गुणवत्ता बनी रहे। फलों को हवादार बैगों से ढक दिया जाना चाहिए ताकि सूर्य की तेज किरणें उन पर सीधे तौर पर न पड़ें जिससे फल के रंग की क्षति से बचा सके, और पक्षियों से भी रक्षा होती है।

रोपण पैटर्न

जाली

पुष्पन

कच्चा फल

पका हुआ फल

झूलना

कपड़ा पहनाना

फल

कटे हुए फल का दृश्य

भाकृअनुप–राअस्ट्रैप्रसं, बारामती में पिताहया फल की फसल स्थापना और विकास के चरण

कटाई और भंडारण

अधिकांशत: कटाई जुलाई–नवंबर में होती है जो 6–8 फ्लैशेस में होता है। फल के प्रारम्भिक विकास काल में अपरिपक्व फल का बाहरी छिलका चमकदार हरा होता है और जैसे–जैसे फल पकने लगता है तो यह लाल रंग में बदल जाता है। इस फसल में एक और सुविधा यह है कि बाजार की मांग के अनुसार कटाई की जा सकती है। स्थानीय बाजारों के लिए छिलके के रंग हरे से लाल/गुलाबी रंग बदलने के 3–4 दिन बाद कटाई की जा सकती है जब कि दूर के बाजारों के लिए रंग बदलने के एक दिन बाद कटाई की जा सकती है। ड्रैगन फल के शेल्फ लाइफ पर अनुसंधान कार्य भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान,

बारामती में किया गया है। भंडारण अध्ययन के प्रारम्भिक दौर में देखा गया है फल की गुणवत्ता बनाए रखने की सम्भावनाएं अच्छी हैं, 5–7 दिनों तक परिवेशी तापमान पर, शीत भंडारण में जैसे 10–12 दिनों तक 18^{0}सें. तापमान पर और 20–21 दिनों तक 8^{0}सें. रखा जा सकता है।

सफलता की गाथा एवं निष्कर्ष

डेक्कन पठार क्षेत्र के कुछ नवोन्मेषी किसानों ने ड्रेगन फल के उत्पादन को मनी–स्पिनिंग व्यवसाय के रूप में रू 6.0 से 7.5 लाख प्रारम्भिक लागत से आरम्भ किया। चूंकि इस फसल में गहन प्रबंधन/अन्त:शस्क क्रियाओ की आवश्यकता नहीं होती है, और इससे निकट के शहरी बाजारों से खुदरा मूल्य रू 150–250 प्रति कि.गा. प्राप्त होता है, अत: किसान दूसरे एवं तीसरे वर्ष के दौरान रू 3–4 लाख/वर्ष/हे. तथा चौथे वर्ष से रू 6–7 लाख का आय अर्जित कर सकते हैं। इसके अलावा किसान रोपण के एक वर्ष बाद ही पौधों से छंटाई की गई सामग्री को पौध के रूप में तथा दूसरे वर्ष से फल बेचकर अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं। चूंकि इस फसल को विपरीत स्थितियों में कम निवेशों के साथ अपनाया जा सकता है, अत: इसे पथरीली जमीन में अपनाने एवं विस्तार करने की अपार सम्भावनाएं हैं। इससे न केवल डेक्कन प्रदेश के अनुपयोगी पथरीली जमीन का उपयोग होगा बल्कि किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। एक बार यह फसल बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक फसल के रूप में स्थापित हो जाने पर निर्यात की भी प्रचुर सम्भावनाएं हैं।

◆ ◆ ◆

ओलावृष्टि: फसल एवं बागवानी में क्षति का स्वरूप तथा प्रबंधन की रणनीतियाँ

सुनिल पोतेकर, सांतनु कुमार बल
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, बारामती–413115, पुणे, महाराष्ट्र

सारांश

दुनिया भर में पिछले दशक के दौरान आनिश्चित बदलते मौसम की बढ़ती घटनाओं से कृषि क्षेत्र में व्यापक क्षति हुई है। वर्ष 2014 के फरवरी–मार्च, के दौरान ओलावृष्टि की घटनाओं से भारत का एक बड़ा हिस्सा प्रभावित हुआथा जिसमे मध्य भारत (महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश) सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ था। हालांकि ओलावृष्टि कुछ भागों में अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में होते है, लेकिन इससे होने वाली तबाही इस बात पर निर्भर करता है कि वह जगह इससे कितनी प्रभावित होते है। ओलावृष्टि को रोका नहीं जा सकता है परन्तु इससे होने वाली जानमाल की हानि को हम अपनी तैयारी, प्रतिक्रिया और प्रबंधन उपायों से कम कर सकते है। ओलों के तूफान के नुकसान से निपटने के लिए मजबूत संस्थागत व्यवस्था और तकनीक की आवश्यकता है। ओलावृष्टि से प्रभावित क्षेत्रों में क्षतिग्रस्त पौधों को बचाने के लिए प्रबंधन तकनीकों औरफल व फसलों की सिफारिश सुनिश्चित करना जरूरी है। क्षतिग्रस्त पौधों के दीर्घकालिक प्रबंधन के लिए फसल विशिष्ट प्रबंधन रणनीतियों का अनुसरण किए जाने की आवश्यकता है। इससे उत्पादकों को अगले फसल के मौसम के लिए बेहतर योजना बनाने का अवसर मिल जाएगा और आने वाले सीजन के लिए एकीकृत फसल प्रबंधन को अपनाने से होने वाले नुकसान को कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

परिचय

वर्षा और तापमान की बदलती आवृत्ति, वितरण और समय फसलों की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालता है। हिम और हिमनदों के पिघलने की बढ़ती दर, लगातार बाढ़ और सूखा, गर्मी तरंगें, ओलावृष्टि, पाला और कीड़े तथा बीमारियों की बढ़ती हुई घटनाएं भारत में कृषि क्षेत्र में व्यापक क्षति का कारण बन रही है। ओलावृष्टि से कुछ मिनटों में फसल तथा बागवानी में भारी तबाही होती है। ओला एक ठोस जमीं हुई वर्षा है जो संपति और फसलों को व्यापक नुकसान पहूँचाते है। गर्म, नमी भरे गर्मियों के दौरान दोपहर का समय ओलो के निर्माण के लिए सबसे अनुकूल हैं। यह आम तौर पर बहुत ही कम अवधि के लिये और अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में होती हैं, हालांकि, कुछ ही समय में भी व्यापक क्षति पहुँचा सकती है।

ओलावृष्टि दुनिया के किसी भी भाग में हो सकती है, हालांकि शीतोष्ण कटिबंध क्षेत्रों मे इसकी आवृत्ति जादा हैं। ओलावृष्टि से होने वाला नुकसान ओलों का आकार तथा प्रति यूनिट क्षेत्र में गिरने वाली ओलों की संख्या, घटना के दौरान हवा का ज़ोर और इसका लक्ष्य होने वाली संपत्ति पर निर्धारित होता है। ओलावृष्टि से फसलों में नुकसान की तीव्रता फसल वृद्धि की अवस्था पर निर्भर करती है। यहां तक कि ओले गिरने की एक छोटी सी घटना में फसलों, फलों के पेड़ों को गंभीर चोट लग सकती है, तथा ब्लाइट, मोल्ड, कैंकर और फलों के सड़ने जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं, जिससे फसलों में पैदावार के साथ–साथ उनकी गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।

ओलावृष्टि की आवृत्ति

भारत में आंधी के साथ बारिश और ओले गिरना ये मौसम की घटनाएं सामान्यतः मानसून पूर्व और मानसून पश्चात के महीनों के दौरान दिखाई देती हैं। सर्दियों में ओलावृष्टि की आवृत्ति कम होती है, लेकिन गर्मियों के मौसम में फरवरी के बाद तथा मार्च और अप्रैल के महीनों में ये अधिक पैमाने मे दिखाई देती है। सामान्य तौर पर वर्षा ऋतु मे ओलावृष्टि की संभावना बहुत कम होती है। दैनिक आवृत्ति के संबंध में, यह देखा गया है कि सबसे जादा ओलावृष्टि की घटनाएं दोपहर के बाद और शाम के शुरूआती घंटों में हुईं है।

क्षति के प्रकार

फसलों में दो मुख्य प्रकार की क्षति देखी गईं – प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हानि। दिलचस्प बात यह देखी गयी है कि, मुख्यतः हवाबहाव की दिशा के शाखाओं मे ज्यादातर क्षति होती है।

प्रत्यक्ष हानि: भारी पतझड़, पत्तियों के टुकड़े टुकड़े होना, शाखाओं का टूटना, पौधों का गिरना, छाल छीलनाऔर शाखाओ में घाव, फूल और अपरिपक्व फलों का झड़ना इत्यादि।

अप्रत्यक्ष हानि: क्षतिग्रस्त पौधों के भागों का मरना, पौधों में बोनापन, क्षतिग्रस्त पत्तियों और फलों में सड़न, क्षतिग्रस्त पौधों में कवक व जीवाणुओं द्वारा संक्रमण फैलना इत्यादि।

ओलावृष्टि से फसल एवं बागवानी में क्षति का स्वरूप

पूर्व-सतर्कता संबंधी निवारक उपाय

फसल के उपर विशेष रूप से उच्च मूल्य वाले फसलों के लिए सुरक्षात्मक स्क्रीन (ओल प्रतिबंधक जाल) का उचित रूप से उपयोग किया जा सकता है। ओल क्लाइमेटोलॉजी, कवर का माइक्रोक्लेमैटिक प्रभाव, इसकी स्थायित्व गुण और स्थापना लागत के आधार पर स्क्रीनों की योग्यता दर्शाते है। भारी आंधी तूफानों के खिलाफ ओल प्रतिबंधक जाल प्रभावी नहीं हैं। ओलावृष्टि आमतौर पर तेज हवाओं के साथ होती हैं, इसलिए वृक्षों का बचाव पट्टा, उनके आस–पास में ओलों की क्षति को कम कर सकता हैं। वृक्षों का बचाव पट्टा तीन तरीके से प्रभाव करता हैं। पेड़ों द्वारा फसलों का सीधे आनेवाले ओलों से बचाव होता है। वृक्ष, हवा के प्रवाह में बदलाव लाते हैं जिससे हवा की प्रतिकूल दिशा का क्षेत्र सुरक्षित होता हैं। इन वृक्षों से हवा की गति भी कम होती हैं, फलस्वरूप ओलों की गति का ऊर्जा कम हो जाती है, ओलों की ऊर्ध्वाधर गिरावट को कम करने में सहायक होती है। जिससे फसलों के नुकसान को कम किया जा सकता है।

ये सावधानियां बरते

- मुख्य फसल में भारी नुकसान से बचने के लिए बागवानी फसलों के चारों ओर हवा को रोकने वाले ऊंचे पेड़ लगाये। ये पानी की आवश्यकताओं और अन्य अजैविक तनावों को भी कम करने में सहायक हैं।
- ओलावृष्टि की उच्च संभावना वाले क्षेत्रों में, विशेषतः उच्च मूल्य वाले फसलों के लिए छाया नेट एक अच्छा विकल्प हो सकता है।
- पंछियों से संरक्षण के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले नायलॉन जाल, ओलों के नुकसान से फसल की रक्षा कर सकते हैं।

फसल विशिष्ट प्रबंधन की रणनीतियाँ

निम्नलिखित खंड में कुछ फसल विशिष्ट प्रबंधन रणनीतियों का वर्णन किया गया है, जिसको ओलावृष्टि से क्षतिग्रस्त पौधों के दीर्घकालिक प्रबंधन के लिए अपनाया जा सकता है। इससे उत्पादकों को अगले फसल के मौसम के लिए बेहतर योजना बनाने का अवसर मिल जाएगा और आने वाले सीजन में एकीकृत फसल प्रबंधन को अपनाने से होने वाले नुकसान को कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

आम

- मराठवाड़ा क्षेत्र में ओले के तूफान के कारण, आसमानी बारिश और तेज गति वाली हवाएं बहती हैं, जिससे फूल और अपरिपक्व फल झड़ जाते हैं।
- फूल और फलों के झड़ने से बचने के लिए, आम के बगीचे को पोटेशियम नाइट्रेट 1.0 % के साथ छिड़का जाना चाहिए।
- मेघाच्छादित मौसम, लगातार नमी और पूर्णसमूह पर गीली स्थितियों की वजह से पाउडर/पाउडरी मिल्ड्यू तथा थ्रिप्स, आम हॉपर जैसे कीड – व्याधियों के संक्रमण की संभावनाएं, बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। इसलिए प्रभावित पेड़ो को फ्प्ररिलिल (5% ईसी) 1.5 मिलिलीटर प्रति लिटर या स्पिनोसड (45% एससी) 0.3 मिलिलीटर/लिटर कीट नियंत्रण के लिए छिड़काव किया जाना चाहिए और पाउडर मिल्ड्यू रोग नियंत्रण के लिए हेक्सैकोनज़ोल 1.0 मिलिलीटर/लिटर को छिड़काव करना चाहिए।

केला

- ओला क्षतिग्रस्त केला बागों में मुख्यतः पत्तियों के टुकड़े होना, फलों पर घाव और पेड़ों का गिरना दिखाई देता है।
- क्षतिग्रस्त बागों में पत्तियों के झड़ने से तैयार हो रहे फलों के गुच्छों का विकास नहीं होता, इसलिए उचित पोषण और सुरक्षा उपायों को अपनाने से कटी हुए पत्तियों को सक्रिय रखना/करना आवश्यक है। फलों के उचित विकास को सुनिश्चित करने के लिए बुरी तरह क्षतिग्रस्त पत्तियों के साथ फलों के गुच्छों को विरल किया जाना चाहिए।
- अपरिपक्व फलों के विकास के लिए नयी पत्तियों को स्वस्थ रखने के लिए 5 ग्राम पोटेशियम डी हाइड्रोजन + 10 ग्राम यूरिया प्रति लिटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करे। इसके अतिरिक्त, पौधों के विकास को तेजी से बढ़ावा देने के लिए यूरिया और सिंगल सुपर फॉस्फेट को मिट्टी में इस्तेमाल किया जा सकता है/करें।
- शारीरिक चोटों और बाद में पत्तियों, फलों में कवकीय संक्रमण से होने वाले नुकसान से बचने के लिए, मेनकोझेब 2.5 ग्राम/लिटर या कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम/लिटर पानी का बागों में छिड़काव करें। सिगाटोका ब्लाइट, जैसे घातक रोग से बचने के लिए, तीव्रता के आधार पर प्रोपिकोनाजोल 0.05% 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- कीट और बीमारियों के उपद्रव से बचने के लिए क्षतिग्रस्त पत्तियों और फलों को हटाकर नष्ट करना चाहिए।
- केले के क्षेत्रों में उचित जल निकासी से अधिक ठहरा हुआ पानी निकालना चाहिए।
- फलों पर सीधे आनेवाले ओलों द्वारा होने वाली क्षति से बचाने के लिए पॉलीप्रोपिलिन बैग या सूखे केले के पत्तों के साथ फलों के गुच्छों को कवर करें।
- जहां आने वाले दिनों में भारी बारिश, ओलों या तूफान के लिए भविष्यवाणी की गई है, उन क्षेत्रों में बागों के चारों ओर नायलॉन/हरे रंग की शीट/शेड नेट डालकर बागों को सुरक्षित रखें।

अनार

- अधिकतर अनार क्षेत्रों में मेघाच्छादित मौसम और लगातार नमी के चलते, *झेंथोमोनास पुनिका* की वजह से होने वाले तेलीय धब्बा व अन्य बैक्टीरियल बीमारियों के प्रसार की संभावना अधिक होती है। इसलिए, एकीकृत निवारक उपायों का कार्यान्वयन

आवश्यक है। इसके लिए, क्षतिग्रस्त पत्तियों, शाखाओं, फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए और बोर्डो मिश्रण (1.0%) या कॉपर आक्सीक्लोराइड (2.5 ग्राम/लिटर पानी) को छिड़काव करना चाहिए। यदि गर्म और आर्द्र जलवायु अभी भी बनी रहती है, एक सप्ताह के बाद ब्रोमोपल 2.5 ग्राम/लिटर की दर से छिड़काव कर देना चाहिए।

- क्षतिग्रस्त पौधों की आयु और ओलों के कारण होने वाले नुकसान की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, क्षतिग्रस्त फलों को पेड़ों से निकाल दें और अतिरिक्त वृक्षों को विरल करके प्रत्येक पेड़ पर इष्टतम संख्या में फल रखें।
- अंबिया बहार के बगीचों में, अगर नुकसान की तीव्रता लगभग 100% है, तो अगला फ्लश मृग बहार में लेने की योजना बनाये। इसके लिए आधे टूटे और क्षतिग्रस्त शाखाओं को छंटाई करके हटा दें। नाइट्रोजन,फॉस्फोरस और पोटाश की सिफारिश की खुराक (250–300 ग्राम / पेड़) की पूर्ति करें।
- 50% से कम नुकसान वाले बगीचे में, पौधों को क्षति से उबरने के लिए सिफारिश की गई खुराक को लागू करें, घायल भागों पर 1.0% बोर्डो पेस्ट लागू करें या 1.0% बोर्डो मिश्रण या कॉपर आक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम/लिटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- आंधी के कारण कठोर हुये क्षेत्रों को नरम करने के लिए हल्की सिंचाई करें।

चीकू

- चीकू में ओलावृष्टि के कारण फूल और फलों का भारी पतन होता है और फलों को नुकसान पहुंचाता है। क्षतिग्रस्त फलों से सफेद लेटेक्स बाहर निकलता है, जो सड़न फैलने वाले कवकों को आकर्षित करता है जिससे बाद में फलों की पूर्ण क्षति हो जाती है। इसे रोकने के लिए, मैनकोज़ेब 2.5 ग्राम / लिटर या कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम/लिटर पानी के साथ छिड़काव करें।

अमरूद

- ज्यादातर इलाकों में, जहां अम्बिया बहार फसल ली जाती है, वहां के बगीचे, फलधारना के चरण में होते हैं और ओलावृष्टि के कारण क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। क्षतिग्रस्त और गिरे हुये फलों को इकट्ठा करके तुरंत नष्ट कर देना चाहिए। क्षतिग्रस्त पौधों के हिस्सों में बीमारी के संक्रमण को रोकने के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड का छिड़काव किया जाना चाहिए।

अंगूर

- ट्रेल्स के तार तक फैली हुई टहनी अगर बुरी तरह से क्षतिग्रस्त होती है, तो उन्हें पीछे से काटकर एक नई टहनी फिर से शुरू करने पर विचार किया जाना चाहिए। एक चोटग्रस्त टहनी जो अंततः ट्रंक बनती है, वह रस प्रवाह मे हस्तक्षेप कर सकती है और भविष्य में रोगों के लिए ठिकाना प्रदान कर सकती है।
- मौसम अगर सूखा रहता है, परिपक्व बेल जो ठीक से प्रबंधित की जा रही हैं, घावों से जल्दी उबर सकती है। शुरुआती सीज़न की चोट के बाद पार्श्व की कलियों से फल की कलियों को शुरू करने के लिए पर्याप्त समय मिलता है, जिसके बाद अगले सीजन में कली की फलफूलता या फसल पर कम प्रभाव पड़ता है।
- उत्तरकाल सीज़न में फूलधरना की अवस्था में ओलावृष्टि से, आनेवाले सीजन में फलधारना और फसल उत्पादन कम दिखाई देता है। इस प्रकार भविष्य की फसलों के लिए उपयुक्त स्थानों में उपजी को विकसित करने और अतिरिक्त कली बनाए रखने के लिए सर्दी के मौसम की छंटाई को समायोजित लेना चाहिए।
- क्षतिग्रस्त पौधे कीट और बीमारी के लिए अधिक संवेदी होते हैं। बोट्रीटिस रॉट जैसी बीमारियों से पौधों कों बचाना बहुत आवश्यक होता है, जो किसी भी क्षतिग्रस्त ऊतक को संक्रमित कर सकता है और जो सीजन की समाप्ति की स्थिति में भी मौसम खराब होने पर फसल को बड़े पैमाने पर संक्रमित कर सकता है।

◆ ◆ ◆

मसाला फसलों में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और उसका प्रबंधन

सी बी हरीशा, आर एल चौधरी, परितोष कुमार
भाकृअनुप– राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती–413 115, पुणे, महाराष्ट्र

जलवायु फसलों के वृध्दि एवं विकास प्रकियाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैश्विक औसत तापमान में हो रही वृद्धि को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। अनियमित मौसम की स्थिति और जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप तापमान में वृध्दि, अनियमित वर्षा, पानी की अधिक मांग, रोगों की बढ़ती घटनाओं के कारण सभी तरह की बीजीय मसाला फसलों का उत्पादन प्रभावित हो सकते है।

बागवानी में फूलों, फलों, सब्जियों, वृक्षारोपण फसलों, मसाले वाली फसलों, जड़ और कंद वाली फसलों, मशरूम, औषधीय और सुगंधित फसलें शामिल हैं। भारत में लगभग 24.39 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर बागवानी फसलें उगाई जाती है जिससे लगभग 280.48 मिलियन टन का उत्पादन होता है। भारत विश्व में मसालों का सबसे बडा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक देश है। मसाला फसलें भारत की सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसलों में से एक है। ये मसाला फसले घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजार में उच्च मांग वाले हैं और भारत हल्दी, काली मिर्च, अदरक, जीरा, धनिया, और अन्य मसालों के उत्पादन, उपभोग और निर्यात में अग्र स्थान रखता है। भारत में प्रमुख मसाला व बिजिया मसाला फसलों के अंतर्गत लगभग 3.5 मिलियन हेक्टर क्षेत्र है और उनसे 70.7 मिलियन टन उत्पादन हो रहा है। मसाले बोर्ड, भारत सरकार के अनुसार वर्ष 2016–17 में कुल 17,664 करोड़ रुपये मूल्य का 9,47,790 टन मसालों और मसालों के उत्पादों को विभिन्न देशों को निर्यात किया गया है। इनमें सबसे अधिक मात्रा में मिर्च का निर्यात होता है तथा इसके बाद हल्दी व जीरा का निर्यात होता है। बीजीय मसालों का कुल क्षेत्र लगभग 1.463 मिलियन हेक्टेयर है और उत्पादन लगभग 1.247 मिलियन टन है जिसमे से लगभग 10 प्रतिशत का निर्यात होता है जिसका मूल्य लगभग 2650.5 करोड रुपये है। अकेले जीरे का लगभग 1838.2 करोड़ रुपये का निर्यात प्रति वर्ष होता है। इनके अलावा बीजीय मसाला फसलों में सबसे ज्यादा क्षेत्र और उत्पादन धनियें का है इसके अलावा सौंफ, मेथी, अजवाइन, सेलेरी, कलोंजी, सोंवा (डील), अनाइस (विलायती सौंफ) और स्याह जीरा की खेती की जाती है। ये सभी फसलें मुख्य रुप से रबी में उगाई जाती है। लेकिन जलवायु के बदलते परीदिशा में निर्यात को बनाये रखना एक बडी चुनौती होगी क्योंकि आने वाले समय में जलवायु परिवर्तन फसलों के लिए खतरनाक स्थिति पैदा/उत्पन्न कर सकता है।

भारत की जलवायु इन मसालों के उत्पादन और गुणवत्ता के लिए उपयुक्त है। सभी मसाला फसले मौसमी फसले है और देश के विभिन्न भागों में उगाए जाते हैं। मसाला फसले मुख्यतः दो प्रकार की होती है। एक प्रमुख या बहुवार्षिक मसाले तथा द्वितीय बीजिया मसालें। प्रमुख मसालों के अंतर्गत काली मिर्च इलायची,लौंग, जायफल, दालचीनी, अदरक, हल्दी, लहसुन इत्यादि शामिल हैं। इन फसलों को अधिक तापमान के साथ उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिसा, पश्चिम बंगाल, असम व अन्य राज्यों में प्रमुख रूप से उगाया जाता हैं। बिजिया मसाले मुख्यतः सर्दी के मौसम में उगाये जाते है क्योंकि इन फसलों को विशेष मौसम की आवश्यकता होती है। बीजीय मसाला फसलें देश के शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों को लिए सोना माना जाता है। भारत में बीजीय मसाला फसलों की खेती मुख्य रुप से दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान और उत्तरी गुजरात के भागों में की जाती हैं इसके अलावा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि राज्यों के कुछ क्षेत्रों में भी मसाला फसलों की खेती की जाती है।

मसाला फसलों के लिए एक उचित जलवायु की आवश्यकता हैं। वर्षा, तापमान व मिट्टी की स्थिति में किसी भी प्रकार का बदलाव होने से इन फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है जैसे कि अधिक बारिस बिजिया मसालों के लिए हानिकारक होती है और कम बारिस मुख्य मसाला फसलों जैसे काली मिर्च, इलाइची, हल्दी और अदरक इत्यादि पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। इन फसलों में जलवायु परिवर्तन के सभी प्रकार के प्रभावों को समझना और उन का शमन करना बहुत अनिवार्य है।

प्रमुख मसाला फसलों में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण काली मिर्च फसल में विभिन्न प्रकार के प्रभाव देख सकते है। काली मिर्च एक बहुवार्षिक फसल हैं और मार्च व अप्रैल महीने की बारिस से फूल खिलता है अतः इन महीनों में बारिस नहीं होती है तो फूलो में वृध्दि नहीं होती है और पैदावार में भारी मात्रा में कमी हो सकती है। मिर्च के विकास और परिपक्वता के समय सूखे या सीमित नमी के कारण फूलों,

स्पाइक कटाई और काली मिर्च के उत्पादन में गिरावट हो सकती है। इसके आलावा उच्च वर्षा की स्थिति में विल्ट रोग का संक्रमण भी बढ़ जाता है।

इलाइची दो प्रकार की होती है, एक छोटी और एक बड़ी इलाइची। छोटी इलाइची मुख्य रूप से ठंडे और आर्द्र मौसम में उगाई जाती है। बड़ी इलाइची देश के उत्तर–पूर्व राज्यों में उगाई जाती है। बड़ी इलाइची में परागण क्रिया बम्बल मक्खी से होती है इस कारण से इस प्रजाति को दक्षिण भारत में नहीं उगाया जाता है। इलाइची में जून और दिसंबर में फूल खिलता है और जलवायु परिवर्तन के कारण फूल अनियमित समय पर धारण हो रहे है। इसके अलावा मधु मक्खियों की मात्रा और उनकी कार्य क्षमता में कमी के कारण परागण क्रिया कम हो रही है। मानसून में देरी के कारण खराब फूलों की संख्या तथा फलों के पकने के समय में अधिक बारिश के कारण फल गलन व जड़ गलन की संभावनाए बढ़ जाती है। फलों के विकास के समय सीमित नमी और सूखा के कारण स्वस्थ व कम गुणवत्ता वाले फलों का उत्पादन हो सकता है।

लोंग एक बहुवार्षिक पेड़ है। जिसके फूल कलियों को मसाले के लिए उपयोग में लिया जाता है। लोंग में दिसंबर और फरवरी के बीच में अधिक और अनियमित बारिस होने पर फूलों में गिरावट अधिक होती है तथा इनकी तुड़ाई और कटाई का काम भी और अधिक मुश्किल हो जाता है। जायफल में अगस्त के महीने में अधिक बारिश के कारण झड़े हुए जायफलों को इकट्ठा करना कठिन हो जाता है इससे जायफल और जयपत्ता के रंग में भी बदलाव आ जाता है जिससे बजार में इनकी कम गुणवत्ता के कारण उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

बीजीय मसाला फसलों में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

बीजीय मसाला फसलें तापमान के प्रति संवेदनशील होती हैं और सबसे उच्च पैदावार और गुणवत्ता के विकास के लिए एक विशेष तापमान की आवश्यकता होती है। बीजीय मसाला फसलों में सर्द और पाला के संयुक्त प्रभाव के कारण भारी नुकसान देखा गया है। बीजीय मसाला फसलें जैसे जीरा, धनिया, अजवाइन, कलोंजी इत्यादि पाला के प्रति अति संवेदनशील होती हैं और वो जलवायु परिवर्तन से ज्यादा प्रभावित होगी। पाला के कारण बीजीय मसाला फसलों में होने वाला नुकसान कभी–कभी लगभग 100 प्रतिशत तक हो जाता हैं। सौंफ और मेथी भी ठंड से प्रभावित होती हैं लेकिन पौधों के विकास का चरण एक महत्वपूर्ण भूमिक निभाता है। इन फसलों में बहुत जल्दी और देर से बुवाई के कारण फसल के अंकुरण में देरी हो सकती है। उदाहरण के लिए जीरा फसल को उचित समय से पहले बोने पर बीज अंकुरण में विलंब हो सकता है और देरी से बोने पर फसल कई तरह की बीमारियों से प्रभावित होती है। इसी तरह सौंफ को देर से बोने से पौधों की वृद्धि में कमी के साथ.साथ उत्पादन में भी लगभग 50 प्रतिशत तक हानि हो सकती है।

बीजीय मसाला फसलें जैविक और अजैविक कारकों के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। बरसात का बीजीय मसाला फसलों के उत्पादन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के कारण बिना मौसम के भारी वर्षा की घटनाओं से, खासकर अगर उच्च तीव्रता से वर्षा हो तो यह बीजीय मसाला फसलों के लिए विनाशकारी साबित होती हैं जिससे अक्सर फसल का उत्पादन और उत्पाद की गुणवत्ता दोनो कम हो जाते है। राजस्थान और गुजरात के कई जिला जहाँ पर

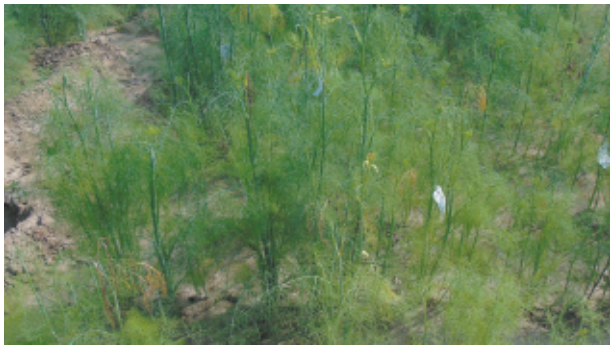

धनिया और सौंफ़ में पाला का प्रभाव

सबसे ज्यादा बीजीय मसाला फसलें उगाई जाती है वहाँ पिछले कुछ सालो में सूखा पड़ रहा हैं। जिससे हमें अभी से सावधान रहने की जरुरत हैं। फूल खिलने से बीज पकने तक के समय में किसी भी बिजिया मसाला फसल में अधिक बारिश होने पर बहुत सारी बीमारियों के संक्रमण की संभावनाएँ बढ़ जाती है। मुख्य रूप से धनिया में लोंगिया रोग, जीरे में झुलसा रोग, मेथी में डाऊनि मिल्ड्यू रोग बहुत तेजी से फैल जाते है। कटाई के समय बारिश होने पर मसालों की गुणवत्ता कम हो जाती है और जिससे उनका बाजार मूल्य भी कम हो जाता है।

सिंचाई की मांग और पानी की उपलब्धता पर प्रभावः जब तापमान बढ़ जाता है, तब पौधों को पानी की अधिक जरूरत पड़ती है क्योंकि वहाँ पौधों से वाष्पोत्सर्जन और मिट्टी से वाष्पीकरण बढ़ जाता है जिससे नमी तनाव बढ़ जाता है। इस प्रकार बीजीय मसाला फसलों में सिंचाई की मांग में वृद्धि हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन से वर्षा में अनियमितता आ जाएगी जिसके फलस्वरूप सुखा पडनें की संभावना बढ जाएगी और सुखा पडनें से पानी की उपलब्धता कम हो जाएगी।

फसलों की परिपक्वता, उपज और उत्पाद की गुणवत्ता पर प्रभावः जलवायु परिवर्तन से फसलों का और अधिक तेजी से विकास होगा और समय से पहले ही परिपक्वता आ जाएगी। जलवायु परिवर्तन से तापमान में वृध्दि होगी लेकिन दीप्तिकाल नहीं बदलेगा। तापमान में वृध्दि से उत्पाद की गुणवत्ता प्रभावित होगी। बीजीय मसाला फसलों की किस्में जो एक दशक पहले की हैं और जो कि वर्तमान समय के अनुकूल नहीं हैं उगाने पर उत्पाद की गुणवत्ता और उपज में कमी आ जाएगी। जलवायु परिवर्तन से पाला पड़ने के समय में अनियमितता आएगी जो उत्पादन और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करेगा। तापमान में परिवर्तन से पौधों के परागण विशेष रूप से प्रभावित होंगे क्योंकि परागण करने वाले कीटो की प्रकृति बदल जाएगी। तापमान का सामान्य से अधिक कम हो जाने से पौधों के विकारों में बढोत्तरी की संभावनाएं बढ़ जाएगी। तापमान में वृध्दि से पौधों में स्वसन और वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में वृध्दि होगी जिससे फसल समय से पहले ही पककर तैयार हो जाएगी।

सूखा प्रभावित मेथी की फसल

भारी बारिश के कारण धनिया फसल में क्षति

वर्षा की मात्रा और तापमान में बदलाव प्रत्येक कीट और रोगों को प्रभावित करता है। सामान्यतः तापमान में वृध्दि के कारण किठों/कीड़े और रोगों की गतिविधि और उत्तरजीविता में वृध्दि होगी। मौजूदा कीट, रोग और खरपतवार के गंतव्य स्थान बदलने

सोंफ में बिज वास्प की नुकसान

जीरे में झूलसा रोग

से उनके व्यवहार बदलने का डर पैदा हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन से बीजीय मसाला फसलो में नये किठों/कीड़े और रोगों के पनपने की सम्भावना बढेगी। फसलों में रोगों का संक्रमण मौसम पर आधारित होता है। जैसे ही मौसम कोहरा वाला होता है जीरे में झूलसा रोग लग जाता है जिसके कारण फसल बर्बाद हो जाती है। उच्च तापमान पर कीटनाशकों का प्रभाव कम हो जाता है जिसके कारण उनकी रोकथाम के लिए अधिक मात्रा में कीटनाशक और कवकनाशियों की जरुरत पड़ेगी। जिसके कारण खेती में लागत बढ़ जाएगी। तापमान परिवर्तन से ज्यादा वाष्पीकरण होगा जिससे फसलों में सिंचाई की मांग बढ़ जाएगी जिससे किसानों पर अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ेगा।

जलवायु परिवर्तन के प्रबंधन के तरीके

हमें जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की एक त्वरित और स्पष्ट समझ की जरूरत है जिससे उचित कृषि प्रणालियों को अपनाकर जलवायु परिवर्तन से उत्पन दुष्प्रभावों का शमन किया जा सके। यहाँ पर कुछ प्रमुख उपाय सूझाये गए हैं जो जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक हो सकते हैं।

- किस्मों का चुनावः जलवायु परिर्वतन में प्रजाति का चयन मुख्य उपकरण माना जाता है। तापमान एक ऐसा मुख्य कारक है जो सभी मसाला फसलों पर प्रभाव डालता है। जलवायु परिर्वतन के कारण निकट भविष्य में मसाला फसलों के क्षेत्र में परिर्वतन आने की सम्भावना है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए नई प्रजाति के प्रजनन कार्यक्रम और तकनीक की आवश्यकता है, जो वर्तमान स्थिति के अनुकूल हो सके। प्रजनन के द्वारा ऐसी किस्मों का विकास किया जाये जो तापमान में वृद्धि के प्रति सहिष्णु, साल के किसी भी समय में उगाया जा सके तथा कम खाद व पानी में भी उच्च उत्पादन देने वाली हो।
- काली मिर्च की पनियुर–3 और पनियुर–5 किस्में छाया के बिना भी सफलतापूर्वक पैदावार दे सकते है। कल्लूवली काली मिर्च की सबसे प्रसिद और सूखा सहिष्णु किस्म है, इस लक्षण से यह किस्म केरल में अधिक क्षेत्र में पाया जाता है।
- इलायची के आई.सी.आर.आई – 6 और विजेता किस्में सूखे की स्थिति के लिए सहिष्णु है और यह किस्म कट्टे वायरल बीमारी के प्रति भी सहिष्णु पायी गयी है।
- अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए सेलेरी की किस्म ए.सेले–01 का विकास किया है जो कि जलवायु परिवर्तन के समय में सेलेरी की खेती करने में सहायक हो सकती हैं।
- अजवाइन की ए.ए–93 किस्म को साल के किसी भी समय में उगा सकते है। यह किस्म अधिक तापमान के प्रति सहिष्णु और कम अवधि में परिपक्व होने वाली है जिससे सिंचाई जल में बचत होने के साथ–साथ इसमें किट व रोगों का प्रभाव भी कम होता है। ऐसी और भी बहुत स्थानीय प्रजातियां जो बदलते हुए जलवायु के दुष्प्रभावों को सहन करने की क्षमता रखती है, अतः इन प्रजातियों का संरक्षण करना अनिवार्य है।
- वन, जल प्रबंधन और सिंचाई प्रणालीः जल संरक्षण के द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। भारी वर्षा के दौरान जल संरक्षण करके फसलों में सिंचाई की मांग को पूरा किया जा सकता है।
- छायादार फसलों जैसे काली मिर्च, इलायची, हल्दी इत्यादि को कॉफी या अन्य फलों के बगीचों में पेड़ो की छाया में उगाया जा सकता है। इससे इनके पानी और वाष्पीकरण की मांग कम हो सकती है।
- बदलती जलवायु के अनुसार फसल पद्धति में बदलाव लाना जैसे अंतर–फसल प्रणाली, मौसम के अनुसार फसल में बदलाव, कम पानी और अधिक तापमान के अनुसार फसलों का चुनाव आवश्यक है इससे फसल नष्ट होने से बचा सकते है।
- बीजीय मसाला फसलों में पानी की आवश्यकता को सिंचाई की ड्रिप विधि के द्वारा कम किया जा सकता है। आम तौर पर सभी बीजीय मसाला फसलों की खेती समतल भूमि पर की जाती है। लेकिन यदि भूमि से ऊपर बेड बनाकर और बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा खेती की जाये तोपानी और खाद की बचत की जा सकती है तथा साथ ही साथ जड़ोंमें अच्छा वातावरण तैयार किया जा सकता है जिससे की फसल अच्छी होगी और पैदावार भी ज्यादा होगा। किसानों को कृषि के नई तकनीकों को अपनाने के लिए शैक्षणिक कार्यक्रमों के द्वारा जागरूकता लाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकता है। ◆ ◆ ◆

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

[1]आराधना कुमारी, [2]संतोष कुमार सिंह
[1]पादप कार्यिकी विभाग, कृषि महाविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्व विद्यालय, विदिशा, मध्य प्रदेश–464221
[2]मृदा विज्ञान विभाग, डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्व विद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार–848125

जलवायु परिवर्तन आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है जिसके कारण हवा, पानी, खेती, भोजन, स्वास्थ्य, आजीविका एवं आवास आदि सभी पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। इस समस्या से हम सभी का जीवन प्रभावित हो रहा है। जलवायु परिवर्तन पर वैज्ञानिको की आम सहमति है कि जलवायु परिवर्तनों में मानव गतिविधियों का सबसे बड़ा हाथ रहा हैं और यह व्यापक तौर पर अपरिवर्तनीय है। जिस प्रकार अधिकाधिक उपज प्राप्त करने की लालसा में भू–जल का दोहन और रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल किया जा रहा है वह इस समस्या को और अधिक गंभीर बना रहा है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन का जो स्पष्ट प्रभाव देखा जा रहा है वह खाद्यान असुरक्षा के रूप में सामने आ रहा है। वहीं प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से खाद्यान की गुणवत्ता प्रभावित हुई है। साथ ही तमाम किस्म की बिमारियों का उद्भव भी हुआ है। जलवायु परिवर्तन मनुष्य के सर्वांगीण विकास के तत्वों: आजीविका, भोजन, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। इसके यथेष्ट समाधान के लिए आवश्यक है कि हम अपने अतीत के अनुभवों और ज्ञान से सबक लें और ऐसे उपायों पर ध्यान केंद्रित करें जो कि खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए जलवायु परिवर्तन के लिए कारगर साबित हों। इसलिए अब किसानों को कृषि के तौर–तरीकों और फसल चक्र में बदलाव लाने की जरूरत है। कृषि के लिए उन तरीकों को अपनाया जाए जिसमें कम पानी और सूखे की स्थिति में पर्याप्त उपज प्राप्त किया जा सके।इसलिए खाद्य और कृषि प्रणाली को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल और ज्यादा लचीला, उपजाऊ व टिकाऊ बनाने की जरूरत होगी। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का उचित इस्तेमाल करना होगा और खेती के बाद होने वाले नुकसान में कमी के साथ ही फसल की कटाई, भंडारण, पैकेजिंग और ढुलाई व विपणन की प्रक्रियाओं के साथ ही जरूरी बुनियादी ढांचा सुविधाओं में सुधार करना होगा। जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है।

औसत मौसमी दशाओं के पैटर्न में ऐतिहासिक रूप से बदलाव आने को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। इन मानवीय कारकों में सबसे अधिक चिंता का विषय, औद्योगिकरण के लिए कोयले और पेट्रोलियम पदार्थों जैसे फासिल/फोस्सिल ईंधन का अत्यधिक उपयोग के कारण कार्बनडाई ऑक्साइड का बेहिसाब उत्सर्जन होना हैं, इसके अलावा वायुमंडल का सुरक्षा कवच ओजोन परतका लगातार ह्रास हो रहा है, जो सूर्य के खतरनाक रेडिएशन को रोकता है। जनसंख्या वृद्धि, जल का बेहिसाब उपयोग, वनों की अंधाधुंध कटाई आदि भी मानवीय कारको में शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन से होने वाले भयावक नुकसान को देखते हुए द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात जलवायु परिवर्तन को लेकर वैश्विक स्तर पर चर्चाएँ प्रारंभ हुईं। 1972 मे स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में पहला सम्मेलन आयोजित किया गया तथा तय हुआ कि प्रत्येक देश जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए घरेलू नियम बनाएगा। इस आशय की पुष्टि हेतु 1972 में ही संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का गठन किया गया तथा नैरोबी को इसका मुख्यालय बनाया गया।

जलवायु परिवर्तन आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है जिसके कारण हवा, पानी, खेती, भोजन, स्वास्थ्य, आजीविका एवं आवास आदि सभी पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री जल स्तर भी प्रभावित होते रहे हैं, असामान्य मानसून और जलसंकट भी इसका प्रारूप है। विनाशकारी समुद्री तूफान का कहर झेलते तटवासी हों अथवा सूखे एवं बाढ़ की विकट स्थितियों से त्रस्त लोग। असामान्य मौसम जनित अजीबो–गरीब बीमारियों से जूझते लोग हों, विनाशकारी बाढ़ में अपना आवास एवं सब कुछ गाँव बैठे तथा दूसरे क्षेत्रों को पलायन करने को मजबूर हुए। दरअसल ये तमाम लोग जलवायु परिवर्तन की मार झेल रहे हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक 1996 से 2000 के बीच देश को सकल घरेलू उत्पाद का 2.25 और राजस्व का 12.5 फीसदी हिस्से का नुकसान उठाना पड़ा। रिपोर्ट में इसकी मूल वजह भौगोलिक परिस्थितियों, संसाधनों की कमी, आपदाओं से लड़ने की तैयारियों में अभाव और जलवायु परिवर्तन को बताया गया है। हिमालय के 8 हजार ग्लेशियर जिस तेजी से पिघल रहे हैं उससे कृषि योग्य भूमि के डूबने की आशंका है। समुद्र का जल स्तर बढ़ने से कई द्वीप और तटवर्ती इलाकों के जलमग्न होने और लोगों को अपनी जान बचाने का संकट भी है।

जलवायु परिवर्तन के बारे में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित आई.पी.सी.सी. के अध्यक्ष डॉ. आर.के. पचौरी के मुताबिक भारत सहित कई देशों की कृषि पैदावार जलवायु परिवर्तन की वजह से बुरी तरह प्रभावित होगी। गेंहूँ, चावल तथा दाल की पैदावार पर इसका ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। यह स्पष्ट है कि भारत की अधिकांश आबादी का मुख्य भोजन गेंहूँ, दाल और चावल ही है। इसलिए इस उत्पादन में होने वाली कमी से भारत में पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। इससे निजात पाने के लिए किसानों को जल तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित दोहन की जरूरत है।

जिस प्रकार अधिकाधिक उपज प्राप्त करने की लालसा में भू–जल का दोहन और रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल किया जा रहा है वह इस समस्या को और अधिक गंभीर बना रहा है। इसलिए अब किसानों को कृषि के तौर–तरीकों और फसल चक्र में बदलाव लाने की जरूरत है। कृषि के लिए उन तरीकों को अपनाया जाए जिसमें कम पानी और सूखे की स्थिति में पर्याप्त उपज प्राप्त किया जा सके। डॉ. पचौरी ने 2007 में अपनी चौथी मूल्यांकन रिपोर्ट में वैश्विक तापमान में 4 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी की संभावना व्यक्त की है। इससे बारिश के पैटर्न में भारी बदलाव होगा। इसमें कोई संदेह नहीं की इसका विद्युत, जल संसाधन और जैव विविधता पर प्रभाव पड़ेगा। इसलिए यह जरुरी है कि रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल को कम करते हुए जैविक खेती पर ध्यान दिया जाए। जैविक खाद के उपयोग से न केवल भूमि की उर्वरता बढ़ेगी बल्कि उसमें नमी की वजह से काफी हद तक सूखे की समस्या से भी निजात मिलेगी। वर्तमान में 180 लाख हेक्टेयर बंजर भूमि का भविष्य में संवर्धन करने में जैव उर्वरक एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

औद्योगिकीकरण के नाम पर जंगलों को अंधाधुंध कटाई, पहाड़ों का कटाव और उसकी वजह से वर्षा चक्र में उत्पन्न अनियमतता किसी से छुपी नहीं है। जिसका परिणाम भूमि के कटाव, भू–स्खलन के रूप में हमारे सामने है जो कृषि को प्रभावित करता है। वहीं दूसरी ओर ग्लोबल वार्मिंग के चलते जिस गति से वाष्पीकरण और अन्य माध्यमों से जल का हनन हो रहा है उसके सापेक्ष जल संवर्धन, वर्षा जल एकत्रीकरण के उपाय नहीं किए गए हैं। जंगलों की कटाई और औद्योगिकीकरण के चलते वायुमंडल में कार्बन उत्सर्जन व अवशोषन का समीकरण गड़बड़ाया है जिसका एक मात्र उपाय ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर नियंत्रण है। इसके लिए ग्रीनर ट्रांसपोर्ट, ऊर्जा का कुशल उपयोग, वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग और परमाणु ऊर्जा का उत्पादन बढ़ाने जैसे उपाय सुझाए गए हैं। लेकिन इसके साथ हमें वृक्षारोपण, परिस्थितिकी संतुलन और ऊर्जा संरक्षण पर भी जोर देना होगा। ईंधन के रूप में बायो फ्यूलका उपयोग कुछ हद तक प्रदूषण में कमी लाएगा। लेकिन इससे बड़ा सवाल यह है कि बायो फ्यूल फसलें उगाने से हमारी खाद्यान उपलब्धता कितनी प्रभावित होगी, खासकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में। इस संदर्भ में विचार करना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि सरकार द्वारा एथनॉल तथा जेट्रोफा की खेती पर पहले से ही काम किया जा रहा है।

वर्तमान में जलवायु परिवर्तन का जो स्पष्ट प्रभाव देखा जा रहा है वह खाद्यान असुरक्षा के रूप में सामने आ रहा है। वहीं प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से खाद्यान की गुणवत्ता प्रभावित हुई है। साथ ही तमाम किस्म की बिमारियों का उद्भव भी हुआ है। जलवायु परिवर्तन मनुष्य के सर्वांगीण विकास के तत्वों: आजीविका, भोजन, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। इसके यथेष्ट समाधान के लिए आवश्यक है कि हम अपने अतीत के अनुभवों और ज्ञान से सबक लें और ऐसे उपायों पर ध्यान केंद्रित करें जो कि खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए जलवायु परिवर्तन के लिए कारगर साबित हों।

भारत सरकार पहले ही कह चुकी है कि वह कार्बन उत्सर्जन में 25 फीसदी तक की कमी लाने का प्रयास करेगी। यह एक बहुत बड़ा कदम होगा, जिसे हासिल करना काफी मुश्किल होगा। वैसे कुछ छोटे–छोटे उपाय भी वैश्विक उष्णता को बढ़ने से रोक सकते हैं। जरूरत केवल इंसानी जज्बे की है। एक ताजा रिपोर्ट के मुताबिक ग्लोबल वार्मिंग की वजह से होने वाले बदलाव भविष्य में और ज्यादा अकस्मात तथा अप्रत्याशित होंगे। रिपोर्ट में अगाह किया गया है कि भारत तथा नेपाल में मानसून के प्रभावित होने से करोड़ों डॉलर के नुकसान का अंदेशा है। डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. के ग्लोबल क्लाइमेट इनीशियेटिव के प्रमुख किम कारस्टेनसेन के मुताबिक अगर हमने जलवायु परिवर्तन को लेकर त्वरित कदम नहीं उठाए तो हमें विध्वंसकारी परिणाम भुगतने होंगे।

जलवायु परिवर्तन के सम्भावित प्रभाव

1. सन् 2100 तक फसलों की उत्पादकता में 10–40 प्रतिशत की कमी आएगी क्योंकि तापमान में लगभग 2 डिग्री की वृद्धि से संभावित अनाज की पैदावार कम कर देती है।
2. रबी की फसलों को ज्यादा नुकसान होगा। प्रत्येक 10 से.ग्रे. तापमान बढ़ने पर 4–5 करोड़ टन अनाज उत्पादन में कमी आएगी।
3. पाले के कारण होने वाले नुकसान में कमी आएगी जिससे आलू, मटर और सरसों के फसल का कम नुकसान होगा।
4. सूखा और बाढ़ में बढ़ोत्तरी होने की वजह से फसलों के उत्पादन में अनिश्चितता की स्थिति होगी।
5. फसलों के बोये जाने का क्षेत्र भी बदलेगा, कुछ नये स्थानों पर उत्पादन किया जाएगा तथा पुराने उत्पादन क्षेत्र उस खास फसल के उत्पादन लायक नहीं रह जाएंगे।
6. खाद्य व्यापार में पूरे विश्व में असन्तुलन बना रहेगा।
7. पशुओं के लिए पानी, पशुशाला और ऊर्जा सम्बन्धी जरूरतें बढ़ेंगी विशेषकर दुग्ध उत्पादन हेतु।
8. समुद्रों व नदियों के पानी का तापमान बढ़ने के कारण मछलियों व जलीय जन्तुओं की प्रजनन क्षमता व उपलब्धता में कमी आएगी।
9. सूक्ष्म जीवाणुओं और कीटों पर प्रभाव पड़ेगा। कीटों की संख्या में वृद्धि होगी तो सूक्ष्म जीवाणु नष्ट होंगे।
10. वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसलों को अधिक नुकसान होगा क्योंकि सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता भी कम होती जाएगी। अंत: वर्षा निर्भर कृषि में जलवायु परिवर्तन के कारण पैदावार में कमी आती है।
11. जलवायु परिवर्तन खाद्य सुरक्षा और आजीविका को प्रभावित करेगा और साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ेगा।

फसलों पर प्रभाव

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो सम्भावित प्रभाव दिखने वाले हैं वे मुख्य रूप से दो प्रकार के हो सकते हैं: पहला क्षेत्र आधारित तथा दूसरा फसल आधारित। अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है। यह तथ्य हम गेहूँ और धान कि फसलों पर अध्ययन कर जान सकते हैं।

गेहूँ उत्पादन

1. अध्ययनों में पाया गया है कि यदि तापमान 2 से.ग्रे. के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूँ की उत्पादकता में कमी आ जाती है। जहाँ उत्पादकता ज्यादा है (उत्तरी भारत में) वहाँ कम प्रभाव दिखता है तथा जहाँ कम उत्पादकता है वहाँ ज्यादा प्रभाव दिखता है।
2. एक पूर्वानुमान के अनुसार प्रत्येक 1 से.ग्रे. तापमान बढ़ने पर गेहूँ का उत्पादन 4–5 करोड़ टन कम होता जाएगा। अगर किसान इसके बुवाई का समय सही कर लें तो उत्पादन की गिरावट 1–2 टन कम हो सकती है।

धान का उत्पादन

1. हमारे देश के कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है। तापमान वृद्धि के साथ–साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी। अनुमान है कि 2 से.ग्रे. तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगा।
2. देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन में ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जाएगी।

3. धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियाँ बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूँ की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घन मीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है, जो समुद्र में है। मनुष्य के हिस्से में कुल 136 हजार घन मीटर जल ही बचता है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है– तरल जो कि समुद्र, नदियों, तालाबों और भूमिगत जल में पाया जाता है, ठोस– जो कि बर्फ़ के रूप में पाया जाता है और गैस–वाष्पीकरण द्वारा जो पानी वातावरण में गैस के रूप में मौजूद होता है। पूरे विश्व में पानी की खपत प्रत्येक 20 साल में दुगुनी हो जाती है जबकि धरती पर उपलब्ध पानी की मात्रा सीमित है। शहरी क्षेत्रों में, कृषि क्षेत्रों में और उद्योगों में बहुत ज्यादा पानी बेकार जाता है। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि यदि सही ढंग से इसे व्यवस्थित किया जाए तो 40 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों के लिए जल आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जाएगी तथा बाढ़ एवं सूखे की बारम्बारता में वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लम्बे शुष्क मौसम तथा फसल उत्पादन की असफलता बढ़ती जाएगी। यही नहींबड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जल बहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा शहरी व औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है। हमारे जीवन में भूमिगत जल की महत्ता सबसे अधिक है। पीने के साथ–साथ कृषि व उद्योगों के लिए भी इसी जल का उपयोग किया जाता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही पानी की माँग में बढ़ोत्तरी होने लगी है यह स्वाभाविक है परन्तु बढ़ते जल प्रदूषण और उचित जल प्रबन्धन न होने के कारण पानी आज एक समस्या बनने लगी है। सारी दुनिया में पीने योग्य पानी का अभाव होने लगा है।

जलवायु परिवर्तन का मिट्टी पर प्रभाव

कृषि के अन्य घटकों की तरह मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। रासायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी पहले ही जैविक कार्बन रहित हो रही थी अब तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव–विविधता घटती जाएगी। भूमिगत जल के स्तर का गिरते जाना भी इसकी उर्वरता को प्रभावित करेगा। बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं सूखे की वजह से इसमें बंजरता बढ़ती जाएगी। पेड़–पौधो के कम होते जाने तथा विविधता न अपनाए जाने के कारण उपजाऊ मिट्टी का क्षरण खेतों को बंजर बनाने में सहयोगी होगा।

रोग, कीट व जानवरों पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की बढ़त पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान, नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधो, फफून्द तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अन्तर्सम्बन्धों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। गर्म जलवायु कीट–पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होता है। लम्बे समय तक चलने वाले वसन्त, गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुप कर ये लार्वा को बचाए रखते हैं। हवा के रुख में बदलाव से हवाजनित कीटों में वृद्धि के साथ–साथ बैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियन्त्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किए जाते हैं जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। जानवरों में बीमारियाँ भी समान रूप से बढ़ेगी।

फसलों और पेड़–पौंधो के साथ जानवरों पर भी जलवायु परिवर्तन का असर दिखेगा। तापमान बढ़ोत्तरी का जानवरों के दुग्ध उत्पादन व प्रजनन क्षमता पर सीधा असर पड़ेगा। अनुमान लगाया जाता है कि तापमान वृद्धि से दुग्ध उत्पादन में सन् 2020 तक 1.6 करोड़ टन तथा 2050 तक 15 करोड़ टन तक गिरावट आ सकती है। सबसे अधिक गिरावट संकर नस्ल की गायों में (0.63 प्रतिशत), भैसों में (0.50 प्रतिशत) और देसी नस्लों में (0.40 प्रतिशत) होगी। संकर नस्ल की प्रजातियाँ गर्मी के प्रति कम सहनशील होती हैं इसलिए उनकी प्रजनन क्षमता से लेकर दुग्ध क्षमता ज्यादा प्रभावित होगी। जबकि देसी नस्ल के पशुओं में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कुछ कम दिखेगा।

कृषि का वातावरण पर प्रभाव

केवल जलवायु ही कृषि को प्रभावित नहीं करती है, बल्कि कृषि भी जलवायु को प्रभावित करती है। कृषि के दौरान मीथेन, कार्बन डाईआक्साइड और नाइट्रस आक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसे निकालती हैं। खेती के लिए जंगलों की कटाई की जाती है जिससे कार्बनडाइ आक्साइड गैसे अवशोषित नहीं हो पाती। धान की खेती के दौरान 54 फीसदी मीथेन गैस निकलती है। खेती में उर्वरकों के इस्तेमाल से 80 फीसदी नाइट्रस आक्साइड निकलती है। डॉ. स्वामिनाथन और डॉ. सिन्हा के रिपोर्ट के मुताबिक 2 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से चावल का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर घट जाता है। वहीं 0.5 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से गेंहू की पैदावार 0.45 टन प्रति हेक्टेयर तक कम हो जाती है। डॉ. शशीधरन की रिपोर्ट के मुताबिक प्रत्येक डिग्री तापमान में बढ़ोतरी से चावल के उत्पादन में 6 डिग्री तक कमी आ जाती है।

कृषि प्रणालियाँ जलवायु की अत्यधिक घटनाओं के कारण संवेदनशील हैं। अंतर सरकारी पैनल (IPCC) की जलवायु परिवर्तन पर ताजा रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकलता है कि गर्मी तनाव, सूखे और बाढ़ की बढ़ी हुई आवृत्ति का नकारात्मक प्रभाव फसलों की पैदावार और पशुओं पर पड़ता है। बदलती जलवायु के लक्षण जैसे सूखा, बाढ़, मानसून का देरी से आरम्भ, शुष्क दौर और गर्म तरंगों से कृषि गतिविधियों में व्यवधान पड़ता है जिससे काफी संकट पैदा हो जाता है। भारत में लगभग 85% छोटे किसान है और उनमें से 60% से अधिक वर्षा पर आधारित कृषि पर निर्भर हैं। जलवायु परिवर्तन से बदलने वाली स्थितियों से किसानों विशेषकर छोटे और निम्न मध्यमवर्गीय किसानकी आजीविका पर गहरा असर पड़ता है। अपेक्षित उत्तमता को प्राप्त करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावशाली अनुकूलन के लिए अनिवार्य परामर्श को यथासमय अपनाने के लिए बदलती सामाजिक आर्थिक कृषि परिस्थितियों, आजीविका प्रणाली और उससे संबंधित संकटों को जानना अनिवार्य है। इसके लिए मौजूदा कृषि ज्ञान और सूचना नेटवर्क (AKINS) को सुधारना और इसे अधिक गतिशील बनाना एवम सभी हितधारकों (राष्ट्रीय और राज्य स्तर के नीति निर्माताओं, विस्तार एजेंटों, बिचौलियोंऔर किसानों आदि) के योग्य बनाना अति महत्वपूर्ण है ।

निष्कर्ष

विश्व की आबादी में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन को देखते हुए दुनिया भर में खाद्य उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है। 2050 तक विश्व की आबादी लगभग 9.5 अरब हो जाएगी, जिसका स्पष्ट मतलब है कि हमें दो अरब अतिरिक्त लोगों के लिए 70 प्रतिशत ज्यादा खाना पैदा करना होगा। इसलिए खाद्य और कृषि प्रणाली को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल और ज्यादा लचीला, उपजाऊ व टिकाऊ बनाने की जरूरत होगी। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का उचित इस्तेमाल करना होगा और खेती के बाद होने वाले नुकसान में कमी के साथ ही फसल की कटाई, भंडारण, पैकेजिंग और ढुलाई व विपणन की प्रक्रियाओं के साथ ही जरूरी बुनियादी ढांचा सुविधाओं में सुधार करना होगा। जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है। कृषि वैज्ञानिकों की यहाँ कमी नहीं है। हमें इस क्षेत्र में तत्काल दो काम करने चाहिए। एक यह कि जलवायु–परिवर्तन से कृषि चक्र पर क्या फर्क/असर पड़ रहा है यह जानना तथा दूसरे क्या इस परिवर्तन की भरपाई कुछ वैकल्पिक फसलें उगाकर पूरी की जा सकती है।साथ ही हमें ऐसी किस्म की फसलें विकसित करनी चाहिए जो जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने में सक्षम हो, मसलन फसलों की ऐसी किस्मों का ईजाद जो ज्यादा गरमी, कम या ज्यादा बारिश सहन करने में सक्षम हो।

◆ ◆ ◆

फसलों में अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन मे कृषि उपयोगी सूक्ष्म जीवों का योगदान

कमलेश कुमार मीणा, गोरक्ष वाकचौरे, अजय एम सोरटी, उत्कर्ष बिटला, नरेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव (खुर्द), बारामती–413115, पुणे, महाराष्ट्र

परिचय

अपनी शशक्त प्रकृति के कारण, पौधे विभिन्न प्रकार के प्रतिकूल भौतिक–रासायनिक–जैविक पर्यावरणीय परिस्थितियों का सामना करते हैं, जिन्हे आमतौर पर 'तनाव' कहा जाता है। इन्ही तनावों का पौधों के जीवन चक्र पर प्रतिकूल, एवं हानिकारक प्रभाव होता है। प्रमुख प्रभावों में प्रकाश संश्लेषण की कम दर का होना, बढ़ते ऑक्सीडेटिव तनाव, तनाव–प्रतिसादी चयापचयों का संग्रह इत्यादि जैसे अवांछनीय चयापचय संबंधी बदलाव शामिल हैं। इन सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अंततः पौधों की वृद्धि, विकास तथा उत्पादकता मे भारी मात्रा मे कमी देखी जा सकती है। अजैविक तनावों में मुख्य रूप से सूखा, लवणता, प्रकाश, गर्मी, क्षारीयता, अम्लता, बाढ़, ठंढ, भारी धातुओं की अधिक मात्रा, आदि शामिल हैं। अधिकांश समय में पौधे को एक से अधिक तनावों का एक साथ सामना करना पड़ता है, जैसे की लवणता और गर्मी, सूखा आदि।

पौधों में कुछ हद तक तनाव की इस स्थिति से निपटने के लिए आंतरिक रक्षा तंत्र मौजूद होते है, लेकिन तनाव की स्थिति एक सीमासे अक्सर अधिक हो जाती है और इसी के परिणाम स्वरूप पौधों की सामान्य वृद्धि तथा विकास की दर में गतिरोध उत्पन्न होता है। और इस लिए वर्तमान समय मे अजैविक तनाव पूरी दुनिया के सामने आबादी के अनुपात मे खाद्य उत्पादन करने के रास्ते मे एक बड़ा अवरोध बनकर सामने खड़ा हो गया है। वैज्ञानिक समुदाय के सामने इस चुनौती का उपाय एक बड़ी चुनौती है। कुछ हद तक तकनीकी विज्ञान, अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनिकी विज्ञान के माध्यम से कुछ खरपतवार विरोधी फसल प्रजाती का विकास किया गया है। इस के अलावा फसल चक्र मे बदलाव करके भी तनावों से बचने की विधियो को सुझाया गया है लेकिन ये सब महँगी तथा समय अधिक लेने वाली प्रक्रिया होने के तहत अजैविक तनावों के कुप्रभावों से फसलों को बचाने के तुरंत फलदायी समाधानो मे शामिल नहीं किए जा सकते है। वैज्ञानिक समुदाय आज एक सस्ती, टिकाऊ तथा प्रभावशाली तकनीक के विकाश की खोज मे लगा है।

अजैविक स्ट्रैस को कम करने की सूक्ष्म जीवों की क्रियाविधी

वैज्ञानिक इस् बात को सिद्ध करचुके है की पोधों के दैनिक जीवन मेंपौधों से जुड़े सूक्ष्म जीवों का अहम योगदान होता है इसलिए पौधों से जुड़े सूक्ष्मजीवों को भी तनाव की स्थिति का सामना करने में पौधों की काफी मदद करतेदेखा गया है। ये सुक्ष्मजीव विभिन्न प्रकार के उपापचयों के निर्माण करके पौधों के विकास को सफलतापूर्वक बढ़ावा देते है। मृदा में मौंजूद सुक्ष्मजीव पौधों की जड़ों वाले प्राक्षेत्र (राईजोस्फियर) में कुशलतापूर्वक उपनिवेश स्थापित करते है, और अपने विभिन्न चयपचयों के चलते पौथों के लिए पोषक तत्वों की आपूर्ति में वृद्धि करते है, जैसे की सुक्ष्म जीव पौधों के लिए फॉस्फोरस, पोटेशियम, आदि की आपूर्ति में बढ़ोतरी करते हैं, सूक्ष्म जैविक सिडेरोफोर्स पौधोंके लिए लोहे की उपलब्धता में वृद्धि करते हैं। मिट्टी में स्थित एवं पौधों से जुड़े सूक्ष्म जीव वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भी नाइट्रोजन–फिक्सेशन की प्रक्रिया द्वारा पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। कुछ सूक्ष्म जीव आइ. ए. ए., जी. ए.,इत्यादि पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक हार्मोन का उत्पादन करते हैं, जो जड़ों एवं तने के विकास को बढ़ावा देते हैं। जड़ों में उपनिवेशीत कई सूक्ष्म जीव एक्सोपालीसेकेराइड (ईपीएस) का उत्पादन करते हैं, जिनमें व्यापक जल धारण क्षमता होती है, वें जड़ों के आस–पास मिट्टी में नमी की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं और जो पौधों को अति सूखा की स्थिति से रोकने मे महत्वपूर्ण योगदान देते है। ईपीएस की अनूठी आणविक संरचना उन्हें पोषक तत्वों, भारी धातुओं और यहां तक कि सोडियम सहित विभिन्न प्रकार के तत्वोंको बांधने में सक्षम बनाती हैं। अतः पौधों को भारी धातुओं और लवणता जैसे तनावों से व्यापक सुरक्षा प्रदान करने हेतु ईपीएस का उपयोग अवश्य ही किया जा सकता है।

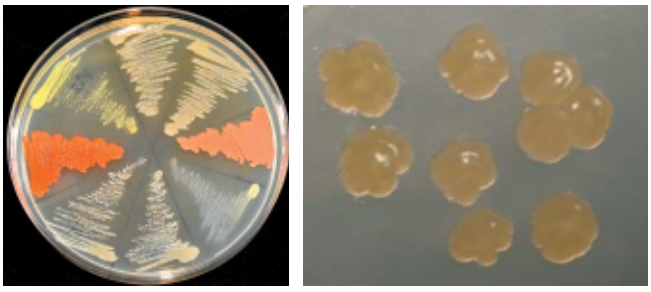

शारीरिक विविधता वाले जीवाणु

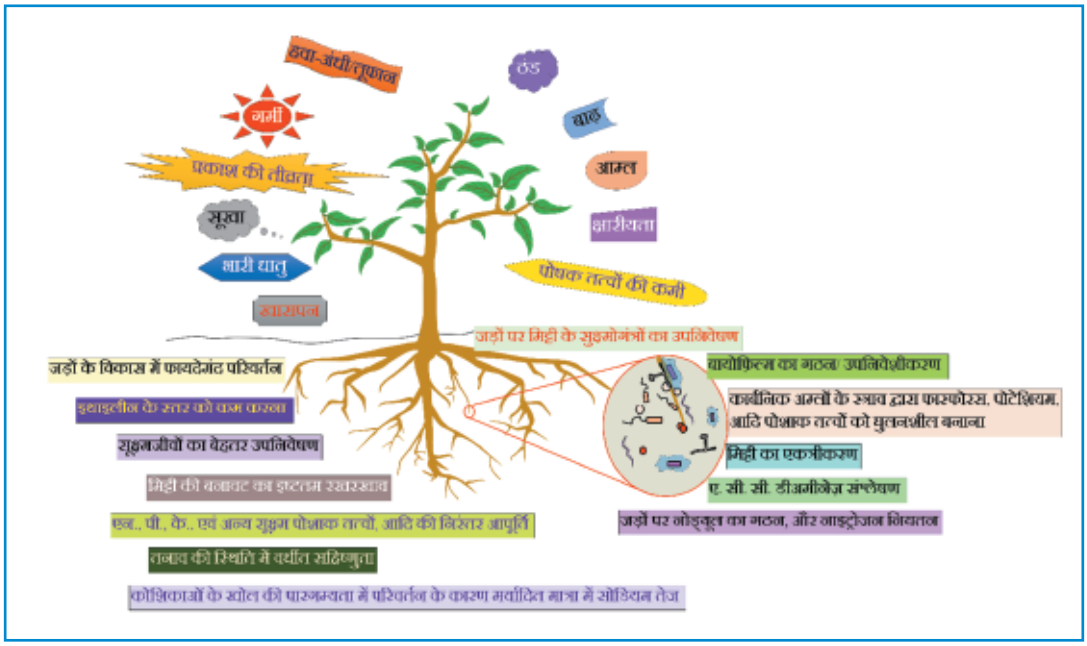

मिट्टी मे स्थित विभिन्न सूक्ष्म जीवों का पौधों के अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन मे योगदान।

इस तरह विभिन्न क्रियाविधीयों द्वारा सूक्ष्म जीव अजैवीक तनाव के प्रभाव में भी पौधों के विकास को बढ़ावा देते हैं। व्यापक शोध के बाद कई उपयुक्त सूक्ष्म जीवोंको पौधों को सक्रियरूप से एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमके संश्लेषण को प्रेरितकरने और उनके स्तर में वृद्धि करने, विभिन्न ओस्मोलाईट्स के संचय के लिए प्रवृत्त करने, औरपौधों में विभिन्न स्ट्रैस–प्रतिक्रिया जनक जीन की अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने के लिए उययुक्त दिखाया गया है। अजैविक स्ट्रैस से ग्रस्त परस्थितियों में भी सूक्ष्म जीव बीज अंकुरण को बढ़ावा देकर उभरते हुये अंकुरों के विकास में सहायता करते हैं। विभिन्न क़िस्मों केबैक्टीरिया, कवक, एक्टिनोमायसीट्स, आदि या तो व्यक्तिगत रूप से या एक साझेदारी के रूप में अत्याधिक तनाव–प्रवण परिस्थितियों में पौधों मे उत्पन्न तनाव के निवारण के लिए लाभकारी प्रदर्शन करते हुए पाये गएहैं। इन सूक्ष्म जीवों में एंडोफाइटिक पौधे के अंदर रहने वाले राइजोप्लेन (जड़ों पर रहने वाले), एवं राइजोस्फेरिक (आस–पास रहने वाले) सूक्ष्म जीव, एवं सहजीवी कवक एवं अब्स्क्युलर मयकोराइजा शामिल होते हैं, जो पौधों में तनाव–प्रतिरक्षी जीनों की अभिव्यक्ति को प्रेरित करने, ओस्मोटिक प्रतिक्रीया को ट्रिगर करने, आदि विभिन्न प्रकार के तंत्रों के माध्यम से अजैविक तनाव–सहिष्णुता को संचालित करते हैं। अक्सर अजैविक तनाव की स्थिति में पौधों में इथीलीन का स्तर बढ़ जाता है। ए. सी. सी. डी. अमीनेज़ एन्जाइम का उत्पादन करने वाले सूक्ष्म जीव एथिलीन के स्तर को कम करके, पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। चूंकि पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले कई सूक्ष्म जीवों में ए.सी.सी.डी. अमीनेज़ गतिविधि नहीं होती है, इस लिए इन सूक्ष्म जीवों के साथ अन्य ए. सी. सी. डी. अमीनेज़ गतिविधि युक्त सूक्ष्म जीवों का प्रयोग तनाव–प्रवण परिस्थितियों में उनकी एकत्रित उपयुक्तता को बढ़ाने के लिए एक प्रभावी उपाय साबित हो सकता है। कुछ सूक्ष्म जीव अपनी चयापचय प्रक्रिया में साइटोकाइनिन और एंटीओक्सीडेंट का उत्पादन भी करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एब्सिसिक एसिड (एबीए) का संचय और प्रतिक्रिया शील ऑक्सीजन प्रजातियों की गिरावट होती है। एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम की उच्च गतिविधियाँ ऑक्सीडेटिव तनाव सहिष्णुता से जुड़ी हुई होती हैं।पौधों की क्रियाविधि के परिवर्तन और पौधों में विभिन्न तनाव–प्रतिरोधी जीनों की अभिव्यक्ति के माध्यम से पानी के घाटे और सूखा तनाव के लिए प्रतिरोध को सुधारने के लिए आर्बस्क्युलर मायकोराइजल (ए.एम.) सहजीवन को अक्सर श्रेय दिया जाता है।एएम कवक का प्रयोग पौधों की पत्तियों में मेलोंडायअल्डिहाईड (एमडीए) और घुलनशील प्रोटीन सामग्री को कम कर सकती है, और सुपर ऑक्साइड डिस्म्युटेस (एसओडी), पेरोक्साइडेज़ (पीओडी) और कैटालेज (सीएटी) जैसे एंज़ाइमों की गतिविधियों को भी बढ़ाती है जो परिणामस्वरूप मायकोराइजल सिट्रस ग्राफ्टिंग में बेहतर ऑसमाटिक समायोजन और सूखा सहिष्णुता के रूप में देखा जा सकता है। लवणता प्रवण क्षेत्र में टमाटर, काली मिर्च, कैनोला, सेम और सलाद के विकास में सुधार के लिए सूक्ष्म जीवों को उपयुक्त पाया गया है।सूक्ष्म जीवों द्वारा संश्लेषित पौधों के वृद्धि–हार्मोन के बारे अच्छी तरह से शास्त्रीय

जानकारी उपलब्ध है। ऑक्सिंस और साइटोकाईनीन जैसे हार्मोन पौधों–सूक्ष्म जीवों के बीच के संकेतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऑक्सिंस और साइटोकाईनीन राईजोबियम–पौधों के सहजीवी नाइट्रोजन निर्धारण के नियमन में भी शामिल होते हैं।हार्मोन उत्पादन करने वाले सूक्ष्म जीव आम तौर पर आई. ए. ए. का उत्पादन करते हैं; वहीं कुछ और जीवाणु जिबरेलिन का भी उत्पादन करते हैं। इन हार्मोन में जीवाणुओं के जीन की अभिव्यक्ति को प्रभावित करने की क्षमता भी पायी जाती है। इस प्रकार हार्मोन पौधों और सूक्ष्म जीवों के बीच संकेतन में भी अहम भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म जीवों द्वारा उत्पन्न हार्मोन पौधों को लवणता और सूखा जैसे अजैविक तनाव–सहिष्णुता में भी मददगार साबित होते हैं। पौधों की वृद्धि मुख्यतः पोषक द्रव्यों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। अधिकांश समय अजैविक तनाव की स्थिति मिट्टी के गुणों को बदल देती है; उदाहरण के लिए, लवणता, अम्लता, क्षारीयता, धातु संदूषण जैसी स्थितियाँ, आदि मिट्टी के भौतिक–रासायनिक गुणों में भारी बदलाव लाती है। राइजोस्फियर में पाये जाने वाले जीवाणुओं में साइडेरोफोर्स संश्लेषण करने की अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा होती है, जो की सक्रिय रूप से लोह पर पकड़ जमाते हैं, और उसकी जैव–उपलब्धता को सुगम बनाते है। विभिन्न मृदाओं में बढ़ रहे पौधों में लोह की कमी की आपूर्ति सक्रिय रूप से करने के लिए कई जीवाणुओं को अत्यंत उपयुक्त पाया गया है।

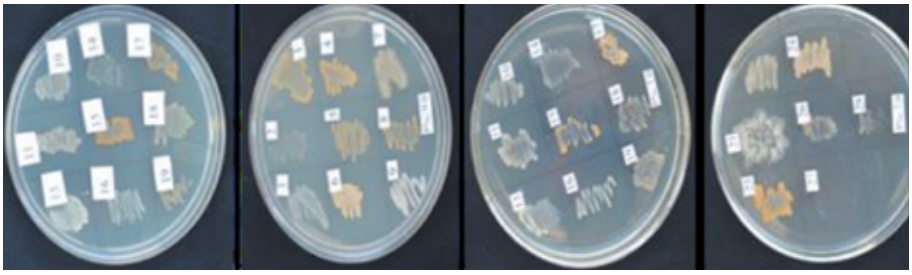

पौधों से जुड़े सूक्ष्म जीव की वायुमंडलीय नाइट्रोजन को नाइट्रोजन–फिक्सेशन की प्रक्रिया व्दारा पौधो के लिए उपलब्ध कराते हैं

निष्कर्ष

बदलते जलवावीय परिवेश मे फसलोपादन मे अजैविक तनाव जैसे अवरोधो के तुरंत समाधान के लिए सहजीवीसूक्ष्म जीवों का उपयोग एक कारगर व आर्थिक रूप से सस्ता जो की किसानो के द्वारा आसानी से उपयोग किए जाने वाला उपाय हो सकता है। सहजीवी सूक्ष्म जीवों का उपयोग करके बढ़ती हुई कृषि लागत को भी कम किया जा सकता है। सूक्ष्म जीवों का उपयोग मृदा स्वास्थ को बेहतर करने के लिए भी एक बेहतर तथा आर्थिक रूप से कारगर साबित हो सकता है। श्रुष्टि पर पोधों की उत्पति के वक्त पोधों को पोषक तत्वो की आपूर्ति हेतु सहजीवी सूक्ष्म जीवों का उपयोग ही एक मात्र तरीका था। राइजोस्फियर स्थित सूक्ष्म जीवों द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का निर्धारण एक और महत्वपूर्ण कार्य है। कई सूक्ष्म–जीवी उपभेदों को अजैविक–तनाव ग्रस्त परिस्थितियों मे भी वायुमंडलीय नाइट्रोजन का सफल निर्धारण करने मे सक्षम पाया गया है। मृदा में फॉस्फेट की घुलन–प्रक्रिया में भी सूक्ष्म जीवों का कार्य महत्वपूर्ण है। फॉस्फेट की उपलब्धता पौधे के सर्वांगीण विकास का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। सूक्ष्म जीव अपने चयापचय में कार्बनिक अम्लों का संश्लेषण करते हैं, जो फॉस्फेट एवं पोटेशियम, आदि तत्वों के घुलन का महत्वपूर्ण कार्य करते है। एंजाइम फाइटेज को भी सूक्ष्म जीवों द्वारा फॉस्फोरस जुटाने में महत्वपूर्ण पाया गया है। बहुत से सूक्ष्म जीव अजैविक तनाव के होते हुये भी फॉस्फेट सुलझाने की अपनी अद्वितीय क्षमता के लिए जाने जाते हैं। ऐसे जीवाणुओं का नित्य कृषि क्रियाओं में प्रयोग आज के दौर में बदलते कृषि–जलवायु परिदृश्य में स्थायी फसल प्रबंधन के लिए अत्यंत उपयुक्त साबित हो सकता है।

◆ ◆ ◆

वर्षा पोषित रबी ज्वार में सूखा प्रबंधन के लिए कृषि की रणनीतियाँ

रंग लाल मीणा[1], नरेन्द्र प्रताप सिंह[2], योगेश्वर सिंह[2], राम लाल चौधरी[2], महेश कुमार[2], जगदीश राणे[2]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, राजस्थान
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मलेगाँव, बारामती–413 115, पुणे, महाराष्ट्र

वर्षापोषित रबी ज्वारभारत के डेक्कन पठार वाले क्षेत्रमे उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। यह भारत के महाराष्ट्र (3.5 लाख हेक्टेयर), कर्नाटक (1.6 लाख हेक्टेयर), तेलन्गाना (0.30 लाख हेक्टेयर) और आन्ध्रप्रदेश (0.18 लाख हेक्टेयर) राज्यों में लगभग 5.6 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर लगभग 0.85 टन / हेक्टेयर अनाज और 3.4 टन / हेक्टेयर चारा की उत्पादकता के साथ उथली एंटिसोल और वर्टिसोल प्रकार कीमिट्टी पर उगाई जाती है। वर्षापोषित रबी ज्वार की फसल मोटे तौर पर सितंबर–अक्टूबर के महीनों के दौरान बड़े पैमाने पर बोई जाती है, तथा यह फसल अपना जीवन चक्र मानसून की वर्षासे नवंबर–दिसम्बर के महीनों में होने वाली औसतन 100 मिमी वर्षा से पूर्ण करती है।

भारत का डेक्कन पठार वाला क्षेत्र, सह्याद्री पर्वत माला के कारण, अप्रत्याशित और अविश्वसनीय बारिश वाले क्षेत्र के रूप मे जाना जाता है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण इस क्षेत्र मे वर्षा पोषित रबी ज्वार तक लगातार सूखे का सामना करती है, जिससे अनाज उपज में 61 से 96 प्रतिसत और चारा उपज में 54 से 69 प्रतिसत हानि होती है। उथली एंटिसोल मिट्टी की कम जलधारण क्षमताव वर्टिसोल मिट्टी की प्रतिकूल भौतिक स्थिति समय पर बुवाई मे बाधा बनती है जिसके कारण इस क्षेत्र मे बारिश की थोड़ी अनिमयता भी सूखे की स्थिति को और भी प्रबल कर देती है। इसके कारण कभी–कभी किसान की पूरी फसल चौपट हो जाती है।

तालिका- सूखा के कारण रबी ज्वार की 'एम-35-1' किस्म की उपजमे नुकसान का आकलन

सूखे के प्रकार		सूखा के कारण उपज मे नुकसान क्षेत्रीय क्षमता की तुलना में (%)		पैटर्न आवृत्ति (%)	जोनक्षमता
		अनाजउपज	चाराउपज		
टर्मिनल सूखा	फसल बढ़वार की अवस्था के दौरान सूखे की स्थिति	95.8	68.6	07.0	3.1 ट/हे अनाज की उत्पादकता
	फूल आने से पहले की अवस्था के दौरान सूखे की स्थिति	85.4	63.9	18.0	
	फूल आने के बाद की अवस्था के दौरान सूखे की स्थिति	61.2	54.0	18.0	8.3 ट/हे चारा की उत्पादकता
फूल आने के समय व बाद की अवस्था के दौरान सूखे की स्थिति		62.3	57.3	17.0	
हल्के सूखे की स्थिति		63.2	61.4	40.0	

वर्षा पोषित रबी ज्वार, डेक्कन पठार वाले क्षेत्र में भोजन और चारा का प्रमुख स्रोत है और इस तरह से यह इसक्षेत्र की आबादी के आर्थिक कल्याण को बहुत प्रभावित करती है। इस क्षेत्रमें, वर्षा पोषित रबी ज्वार की उत्पादकता, मुख्यतया सूखा की समस्या के कारण प्रभावित होती है। सूखे के कारण किसानों को वास्तविक क्षमता के अनुरूप वर्षा पोषित रबी ज्वार की उपजनही मिल पा रही है। अत: भविष्य में इस क्षेत्र में मानव और पशु की बढ़ती जन संख्या के भोजन और चारा की जरूरतों को पूरा के करने लिए, वर्षा पोषित रबी ज्वार के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना आवश्यक है।

सूखा प्रबंधन के लिए कृषि संबंधी रणनीतियां

ज्वार एक सूखे के प्रति सहिष्णु फसल है, फसल मे किसी भी विकास अवस्था के दौरान 13 से 15 दिन तक पानी की कमी, पैदावार पर कोई असर नहीं डालती है, लेकिन 27 दिन से अधिक पानी की कमी, पैदावार पर विपरीत असर डालती है।

तालिका 1 में प्रस्तुत आंकड़ों से संकेत मिलता है कि वर्षा पोषित रबी ज्वार में सूखे की वजह से उपज नुकसान बहुत अधिक है। सूखे की वजह से उपज नुकसान मुख्यतया सूखे की तीव्रता, फसल की अवस्था व सूखा के अंतराल पर निर्भर करता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस आलेख में विभिन्न प्रकार की मिट्टियों एवं विभिन्न प्रकार की सूखा स्थितियों के लिए विभिन्न कृषि संबंधी क्रियाओं की सूखा शमन क्षमता को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

समय पर बुवाई

बुवाई का समय फसल वर्धी, विकास और उपज को प्रभावित करने वाले प्रमुख गैर–मौद्रिक निवेष्टा है। इष्टतम बुवाई फसल विकास के सभी चरणों में फसल को उपयुक्त वातावरण प्रदान करके फसल उत्पादकता को बेहतर बनाता है। भारत के डेक्कन पठार वालाक्षेत्र में, समय पर बुवाई वर्षापोषित रबी ज्वार को मुख्य रूप से तीन प्रकार से मदद करती है, प्रथम, रबी ज्वार की फूल बनने की अवस्था कम तापमान के प्रति अति संवेदनशील है, अगर रात का तापमान फूल बनने की अवस्था के समय 10ओ सेंटीग्रेड से नीचे गिर जाता है, तो यह निषेचन प्रक्रिया को बहुत नुकसान करता है जिससे ज्वार की बाली मे बीज बनने की क्रिया आंशिक या पूर्ण रुप से प्रभावित हो जाती है। दूसरा, समय पर बुवाई फसल को प्रारंभिक अवस्था मे अच्छी तरह से स्थापित होने मे सहायक होता है। अच्छी तरह से स्थापित फसल मे, शुरुआती जड़ विकास जल्दी हो जाता है जिससे फसल मानसून व मानसून के बाद वाली बारिश के जल का कुशलतापूर्वक उपयोग कर पाती है। तीसरा, समय पर बुवाई वाली फसल मे कीट और बीमारी कम लगती है। शोध निष्कर्ष भी इष्टतम बुवाई के समय के लाभकारी प्रभाव के बारे में बात करते हैं। एक शोध निष्कर्ष मे यह पाया गया की 15 सितंबर को बुवाई की गई रबी ज्वार की किस्म फुले अनुराधा मे अनाज की उपज 1.74 टन/हेक्टर व चारे की उपज 4.10 टन/हेक्टर आकलित की गई जो 30 सितंबर और 15 अक्टूबर को बुवाई की गई फसल की पैदावार की तुलना मे क्रमशः 20.1 व 56.8% अनाज की उपज मे व 16.4 व 49.3% चारे की उपज मे अधिक है। बुवाई में देरी के साथ फसल की पैदावार में कमी नमी की वजह से हो सकती है क्योंकि भारत के डेक्कन पठार वाला क्षेत्र सूखा प्रवण क्षेत्र के रूप मे रेखाकित किया गया है जहा नमी उपलब्धता हमेशा उप–सीमांत स्तर पर रहती है। वर्षापोषित रबी ज्वार ज्यादातर उथली एंटिसोल और वर्टिसोल प्रकार की मिट्टी पर ज्यादा तर बोई जाती है, जिनकी नमी भंडारण क्षमता सीमित होती है, अत: फसल बढ़वार की शुरुआती अवस्था मे ही यह मृदीय फसल को नमी प्रधान करने मे असमर्थहो जाती है जिसका सीधा असर फसल की पैदावार पर पड़ता है।

इष्टतम पौधे की आबादी

इष्टतम पौधे आबादी फसल वर्धी, विकास और उपज को प्रभावित करने वाला दूसरा प्रमुख गैर–मौद्रिक निवेष्टा है। इष्टतम पौधे आबादी, फसल विकास के सभी चरणों में फसल को उपयुक्त वातावरण प्रदान करके फसल उत्पादकता को बेहतर बनाता है। वर्षा पोषित रबी ज्वार उथली एंटिसोल और वर्टिसोल प्रकार की मिट्टी जिनकी नमी भंडारण क्षमता उथलेपन के कारण सीमित होती है, पर बोई जाती है। तथा यह फसल अपना जीवन चक्र मानसून की वर्षा से भूमि की अंदरूनी सतह मे संचित नमी व मानसून के बाद होने वाली वर्षासे पूर्ण करती है। यह क्षेत्र बारिश की मात्रा व समय के लिए, अप्रत्याशित और अविश्वसनीय बारिश वाले क्षेत्र के रूप मे जाना जाता है। उथलेपन के कारण मिट्टी की कम नमी भंडारण क्षमता व बारिश की अनिश्चितता के कारण इस क्षेत्र मे वर्षापोषित रबी ज्वार बुवाई से कटाई तक की अवधि के दौरान लगातार टर्मिनल सूखे का सामना करती है।

इन स्थितियों में इष्टतम पौधे एक रणनीति के रूप में कार्य करती है जो पानी के उपयोग के समय को बदलकर टर्मिनल सूखे की तीव्रता को कम करती है। खेत में इष्टतम दूरी पर लगाए गए छोटे पौधे, कम जड़ विकास के कारण केवल उसी पानी का उपयोग कर पाते हैं जो बिलकुल जड़ के पास होता है, कम विकसित जड़ तंत्र के कारण दो पंक्तिया दो पौधे के मध्यम वाले क्षेत्र के पानी का उपयोग नहीं कर पाते है। तथा यह पानी भूमि की अंदरूनी सतह मे दो पंक्तिया दो पौधे के मध्यम वाले क्षेत्र मे संचित रहता है। हालांकि, जब पौधे फूल बनने की अवस्था के पास जाते हैं, तब तक पौधे का जड़ तंत्र पूर्णतया विकसित हो जाता है तथा पौधे दो पंक्तिया दो पौधे के मध्यम वाले क्षेत्र मे संचित पानी का उपयोग कर पाते है। यहाँ मुख्य मुद्दा यह है कि ज्वार मे फूल जल मांग की सबसे संवंदी अवस्था है, अगर इस अवस्था पर पौधे को पानी की कमी महसूस होती है तो, निषेचन प्रक्रिया को भारी नुकसान होता है जिस से ज्वार की बाली मे बीज बनने की क्रिया आंशिक या पूर्ण रुप से प्रभावित हो जाती है।

रोपण दूरी 60×15सेमी,पौधे की जनसंख्या 111,111 पौधे / हेक्टेयर

रोपण दूरी 45×15सेमी,पौधे की जनसंख्या 148,148 पौधे/ हेक्टेयर

रोपण दूरी 45×10 सेमी,पौधे की जनसंख्या 222,222पौधे/ हेक्टेयर

वर्षा पोषित रबी ज्वार की किस्म फुल अनुराधा की देर से बुवाई की स्थिति मे उथली काली मिट्टी पर अलग अलग पौधों की आबादी के साथ प्रदर्शन

आमतौर पर डेक्कन पठार वाले क्षेत्र में वर्षापोषित रबी ज्वार फूल बनने की अवस्था में टर्मिनल सूखे का सामना करती है। इस स्थिति में इष्टतम पौधे आबादी के कारण भूमि की अंदरूनी सतह मे दो पंक्तिया दो पौधे के मध्यम वाले क्षेत्र में संचित पानी फूल बनने की अवस्था पर पौधे को मिल जाता है व पौधा टर्मिनल सूखे को सहने में सक्षम हो जाता है। इसके विपरीत सघन पौधे वाले खेत में दो पंक्तिया दो पौधे के मध्यम वाला क्षेत्र से पौधे शुरुवाती अवस्था मे ही पानी का उपयोग कर इसे पहले ही समाप्त कर देते हैं। इस कारण से फूल बनने की अवस्था पर पौधों को मिट्टी से पानी नहीं मिल पाता व फसल के टर्मिनल सूखेका शिकार हो जाती है। शोध निष्कर्ष भी इष्टतम पौधे के लाभकारी प्रभाव के बारे में बात करते हैं। एक शोध निष्कर्ष मे यह पाया गया की तीन अलग अलग जगह (बेल्लारी, बीजापुर व सोलापुर) पर जब वर्षा पोषित रबी ज्वार की पौधे आबादी को 45(×1000/हे) से 135(×1000/हे) किया गया तो तीनों स्थान की औसत अनाज उपज 2.04 टन/हेक्टर से बढ़कर 2.40 टन/हेक्टर हो गई पर पौधे आबादी को 135(×1000/हे) से ऊपर बढ़ाने पर तीनों स्थान की औसत अनाज उपज मे गिरावट देखी गई। एक सीमा के बाद पौधे की आबादी के बढ़ने पर पौधे शुरुआती अवस्था मे ही पानी का उपयोग कर इसे पहले ही समाप्त कर देते है जिसकी वजह से फसल की पैदावार में कमी आ जाती है। इस कारण से फूल बनने की अवस्था मे पौधों को मिट्टी से पानी नहीं मिल पाने के कारण फसल टर्मिनल सूखे का शिकार हो जाता है।

बुवाई की गहराई

वर्षा पोषित रबी ज्वार उथली एंटिसोल से लेकर गहरी वर्टिसोल प्रकार की मिट्टीयों पर बोई जाती है। इन मिट्टीयों की स्वयं की अपनी अपनी योग्यताएं और कमियाँ हैं, जैसे कि एंटिसोल समूह की मिट्टियाँ, अपने उथलेपन व कम चिकनी मिट्टी की मात्रा के कारण हल्की संरचना के लिए जानी जाती है। इन मिट्टीयों मे हल्की संरचनाके कारण खेत की तैयारी, बुवाई व निराई–गुड़ाई के काम आसानी से व समय पर हो जाते है। समय पर बुवाई के कारण बीज, मिट्टी की नमी का बेहतर उपयोग कर पाते है, जिसके फलस्वरुप खेत मेअच्छे बीज अंकुरण के कारण बेहतर फसल स्थापित हो जाती है। लेकिन दूसरी तरफ एंटिसोल मिट्टी के उथलेपन व कम चिकनी मिट्टी की मात्रा के कारण इस प्रकार की मिट्टीयों की जल भंडारण क्षमता कम हो जाती है, तथा वर्षापोषित रबी ज्वार बुवाई से कटाई तक की अवधि के दौरान लगातार इस प्रकार की मिट्टीयों मे टर्मिनल सूखे का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार वर्टिसोल समूह की मिट्टीयों मे ज्यादा चिकनी मिट्टी की मात्रा व अधिक गहरी होने के कारण इनकी जल भंडारण क्षमता अधिक हो

जाती है जो फसल को बाढ़ वाली अवस्थाओ पर टर्मिनल सूखे के प्रभाव से बचाती है। लेकिन ज्यादा चिकनी मिट्टी की मात्रा होने के कारण इनकी संरचना भारी हो जाती है। इस प्रकार की मिट्टीया वर्षा के तुरंत बाद बहुत ज्यादा चिपचिपी हो जाती है व मिट्टी मे थोड़ी नमी की कमी होते ही बहुत ज्यादा कठोर हो जाती है। इस प्रकार के भौतिक गुण होने के कारण खेत की तैयारी, बुवाई व निराई–गुड़ाई के काम आसानी से, अच्छे तरीके से व समय पर नहीं हो पाते है। जिसके फलस्वरुप खेत मे बीज को उपयुक्त नमी नहीं मिल पाती है तथा खेत मे कम बीज अंकुरण के कारण बेहतर फसल स्थापित नहीं हो पाती है।

ज्वार एक छोटे बीज वाली फसल है तथा बेहतर फसल स्थापना के लिए इस के बीज को कम गहरायी पर लगाया जाना चाहिए।लेकिन उपरोक्त प्रतिकूल मिट्टी की भौतिक स्थितियों व बारिश की अनिश्चित ताके कारण बीज बुवाई की गहराई भी वर्षा पोषित रबी ज्वार के लिए संवंदी है। वर्षा पोषित रबी ज्वार की फसल की सफलता व असफलता जितनी समय पर बुवाई व इष्टतम पौधे आबादी पर निर्भर करती है उतनी ही बीज बुवाई की गहराई पर भी निर्भर करती है। शोध निष्कर्ष यह बताते हैं कि वर्षा पोषित रबी ज्वार फसल की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए मध्यम से गहरी वर्टिसोल प्रकार की मिट्टीयोंमे सामान्य नमी की स्थिति में बीज बुवाई की गहराई2–3 सेमी से अधिक नहीं होनी चाहिए।जबकि एंटिसोल समूह की मिट्टीयों में, बीज बुवाई 4–5 सेमी की गहराई तक होना चाहिए। सिंचाई की स्थिति में दोनों प्रकार की मिट्टीयों में, बीज बुवाई की गहराई 2–3 सेमी उपयुक्त होती है। शुष्क स्थितियों मे दोनों प्रकार की मिट्टीयों में बीज बुवाई की गहराई4–5 सेमी होनी चाहिए, लेकिन किसी भी हालत में बीज बुवाई की गहराई 5 सेमी से अधिक नहीं होनी चाहिए।

समय पर खरपतवार नियंत्रण

शुष्क क्षेत्रों में, समय पर और प्रभावी तरीके से खरपतवार नियंत्रण एक प्रमुख कृषि क्रिया है जो फसल विकास और उपज पर तत्काल सकारात्मक प्रभाव ला सकती है। फसलों में कीड़े, बीमारियों और खरपतवार की वजह से कुल उपज मे होने वाली हानियो में,एक तिहाई हिस्सा केवल मात्र खरपतवार का होता है। खरपतवार के कारण फसल उपज मे होने वाली हानि की समस्या उन क्षेत्रों में और अधिक गंभीर हो जाती है, जहां फसल की पैदावार प्राथमिक रूप से पानी की सीमितता से निर्धारित होती है। शोध निष्कर्षो मे यह पाया गया है कि कम नमी वाले खेत में खरपतवार केवल पानी के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा के जरिए 50 प्रतिशत से अधिक फसल की पैदावार में कटौती कर सकते हैं। बुवाई के बाद के 20 से 25 दिनों तक ज्वार का विकास धीमी गति से होता है, इस समय अगर खेत में नमी की कमी हो और खरपतवारओं ज्यादा हो तो फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा ज्वार के पोधों को कमजोर व बीमार कर सकती है। खरपतवार पानी के अलावा भी, फसल से, सूरज की रोशनी और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते है। तथा विभिन्न प्रकार के संसाधनो के लिए प्रतिस्पर्धा कर खरपतवार फसल उपज को 15–83 प्रतिशत तक नुकसान कर सकते है। खरपतवार के कारण होने वाले इस नुकसान से बचाने के लिए फसल की बुवाई के शुरुआती 45 दिन तक खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है, इस के लिए पहली हाथ से खरपतवार निकालने क्रिया फसल बुवाई के 15 से 20 दिन के बाद व दूसरी खरपतवार निकालने क्रिया फसल बुवाई के 30 से 35 दिन बाद करना आवश्यक है।

मिट्टी की स्थिति के आधार पर किस्म का चयन

वर्षा पोषित रबी ज्वार बुवाई से कटाई तक की अवधि के दौरान लगातार टर्मिनल सूखे का सामना करती है। उथली एंटिसोल मिट्टी की कम जल धारण क्षमता, वर्टिसोल मिट्टी की प्रतिकूल भौतिक स्थिति, बारिश की अनिश्चितता से सूखे की स्थिति और भी प्रबल हो जाती है व फूल बनने की अवस्था का ठंड से प्रभावित होती है और कम उपज के प्रमुख कारण बनती है। इन स्थितियों में मिट्टी की स्थिति के आधार किस्मों का चयन डेक्कन पठार वाले क्षेत्र के लिए सबसे अधिक उपयुक्त माना गया है। शोध निष्कर्ष यह बताते है की उथली एंटिसोल समूह की मिट्टीयों के लिए छोटी अवधि वाली किस्मे जैसे कि सलेक्सन–3, फुले अनुराधा उपयुक्त होती है व एम 35–1, फुले सुचित्रा जैसी किस्मे मध्यम से गहरी वर्टिसोल समूह की मिट्टीयों के लिए उपयुक्त होती है। डेक्कन पठार वाले क्षेत्र के लिए वर्षा पोषित रबी ज्वार की विभिन्न किस्मों का वर्गीकरण इस क्षेत्र की मिट्टीयों की योग्यता और कमियों के आधार पर नीचे दी गई तालिका–2 मे दिया गया है।

तालिका- मिट्टी की स्थिति के आधार पर विभिन्न रबी ज्वार की किस्मों और संकरों का वर्गीकरण

किस्म/ संकर	मिट्टी की स्थिति (गहराई के आधार पर)			
	उथली मिट्टी	मध्यम मिट्टी	गहरी मिट्टी	सिंचित मिट्टी
किस्म	सलेक्सन–3, फुले–अनुराधा, मऊली, सीएसवी–26	मऊली, फुले–चित्रा, फुले–सुचित्रा, परभणी–मोती, सीएसवी–14आर, डीएसवी–4	सीएसवी–18, सीएसवी–22, सीएसवी–26आर (फुले–यशोदा), पीकेवी क्रांति, सीएसवी–14आर, सीएसवी–29आर, डीएसवी–5	फुले–वसुधा, फुले–रेवती, सीएसवी–26आर (फुले–यशोदा), डीएसवी–4, सीएसवी–29आर,
संकर	–	सीएसएच–15आर	सीएसएच–15आर, सीएसएच–19आर	सीएसएच–15आर, सीएसएच–19आर

पोषक तत्व प्रबंधन

वर्षा पोषित रबी ज्वार समित नमी भंडारण क्षमता डेक्कन पठार के सूखा प्रवण क्षेत्र की उथली एंटिसोल और वर्टिसोल प्रकार की मिट्टीया, पर बोई जाती है।फसल बदवार की शुरुआती अवस्था मे ही यह मिट्टियाँ फसल को नमी प्रदान करने मे असमर्थ हो जाती है जिसका सीधा असर फसल की पैदावार पर पड़ता है। इन स्थितियों में पोषक तत्व प्रबंधन, छोटे पौधे की जड़ो के विकास मे सहायक बन कर पौधों को मिट्टी की गहरी प्रोफाइल से पानी निकालने के लिए सक्षम बनाता है, जिससे टर्मिनल सूखे की तीव्रता कम हो जाती है। वर्षापोषित रबी ज्वार के लिए उपयुक्त उर्वरक मात्रा बुवाई से पहले जड़ के पास लगभग 5–10 सेमी गहराई पर ड्रिल विधि से डालने से फसल की पैदावार पर सकारात्मक असर पड़ता है।

बुवाई/रोपण की दिशा

डेक्कन पठार वाले क्षेत्र में वर्षापोषित रबी ज्वार की उपज प्राथमिक तौर पर मिट्टी की नमी से निर्धारित होती है। तथा मिट्टी की नमी से विकरणों के कारण मिट्टी से होने वाले वाष्पीकरण से प्रभावित होती है।शोध निष्कर्ष यह बताते है की उत्तर से दक्षिण दिशा मे की गई पंक्ति बुवाई वाली फसल मिट्टी से होने वाले वाष्पीकरण, पूर्व से पश्चिम दिशामे की गई पंक्ति बुवाई फसल से होने वाले वाष्पीकरण से कम होता है।

निष्कर्ष

इस समीक्षा से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि:

1. डेक्कन पठार वाले क्षेत्र में वर्षा पोषित रबी ज्वार की उपज प्राथमिक तौर पर मिट्टी की नमी से निर्धारित होती है।
2. इष्टतम बुवाई का समय, फसल विकास के सभी चरणों में फसल को उपयुक्त वातावरण प्रदान करके फसल उत्पादकता को बेहतर बनाता है।
3. इष्टतम पौधे आबादी एक रणनीति के रूप में कार्य करती है जो पानी के उपयोग के समय को बदलकर टर्मिनलसूखेकी तीव्रता को कम करती है।
4. प्रतिकूल मिट्टी की भौतिक स्थितियों व बारिश की अनिश्चितता के कारण बीज बुवाई की गहराई, वर्षापोषित रबी ज्वार फसल की सफलता व असफलता के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

5. कम नमी वाले क्षेत्र में खरपतवार केवल पानी के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा के जरिए 50 प्रतिशत से भी अधिक फसल की पैदावार में कटौती कर सकते हैं।

6. मिट्टी की स्थिति के आधार पर वर्षा पोषित रबी ज्वार फसल के लिए किस्मों का चयन डेक्कन पठार वाले क्षेत्र के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है।

7. पोषक तत्व प्रबंधन,छोटे पौधे की जड़ो के विकास मे सहायक बन कर पौधों को मिट्टी की गहराई से पानी निकालने के लिए सक्षम बनाता है।

8. उत्तर से दक्षिण दिशा मे की गई पंक्ति बुवाई वाली फसल मिट्टी से होने वाला वाष्पीकरण, पूर्व से पश्चिम दिशा मे की गई पंक्ति बुवाई वाली फसल मिट्टी से होने वाले वाष्पीकरण की तुलना मे कम होता है।

निष्कर्ष, उपरोक्त सभी कृषि संबंधी रणनीतियां सूखे के प्रभाव को कम करती हैं लेकिन उनके सूखा शमन की क्षमता के आधार पर हमने इन कृषि क्रियाओं को निम्नानुसार रखा है:– समय पर बुवाई शइष्टतम पौधे आबादी $\leq$ बुवाई की गहराई $\leq$ समय पर खरपतवार नियंत्रण $\leq$ मिट्टी की स्थिति के आधार पर किस्म का चयन = पोषक तत्व प्रबंधन $>$ बुवाई रोपण की दिशा।

◆ ◆ ◆

दुग्ध-पशु हेतु ग्रीष्मकालीन चारा व्यवस्थापन

एन पी कुराडे, ए पी गलांडे, ए व्ही निर्मले, एस एस पवार, जगदीश राणे, नरेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र।

कृषि और पशुपालन एक–दूसरे के पूरक व्यवसायों में से एक हैं। पशुपालन और दुध उत्पादन बढ़ाने के क्षेत्र में चारा प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है। भारत दूध उत्पादन में नंबर एक है लेकिन विभिन्न मौसमों में दूध उत्पादन बहुत भिन्न है।सर्दियों में दूध उत्पादन अधिक होता है और गर्मियों में दूध उत्पादन काफी कम हो जाता है। इसी कारण, किसान के आमदनी में बहुत नुकसान होता है, इसलिए गर्मी से बचाव के लिए पशुओं का प्रबंधन ठीक से करना जरुरी है। गर्मियों में दूध के उत्पादन में कमी के लिए एक महत्वपूर्ण कारण अनुपयुक्त चारा प्रबंधन है।यदि किसान सर्दियों और मानसून में चारे का उचित प्रबंधन करता है, तो गर्मियों में दूध उत्पादन बरकरार रखने में मदद होती है। गर्मियों में कम पानी की वजह से हरा चारा मिलना मुश्किल है इसके लिए उचित नियोजन की आवश्यकता है।

1) चारा फसलों का चयन: गर्मियों में ज्यादातर समय पानी की कमी रहती है, इसलिए चारा फसलों का उत्पादन करना मुश्किल होता है। इससे बचने के लिए, कम पानी से मिलने वाले चारा फसले और चारे के जातियों का चयन करें। अगर पानी की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है, तो उन किस्मों का चयन करें जिनमें से चारे के साथ अनाज भी बढ़ने की संभावना हो। इसके अलावा, सरकारी संस्थान द्वारा निर्मित किस्मों में से अपने क्षेत्र के अनुसार, सही किस्मों का चयन करें। जब भी समय अनुकुल खाली खेतों में कम पानी उपजाने वाली घास और दूसरे चारा जैसे फसलों का उत्पादन करना चाहिए।

उपयुक्त चारा फसले

अ.क्र.	फसल का नाम	प्रजाती	बिज / हेक्टर	उत्पादन / हेक्टर	प्रथिन की मात्रा
1	जवार	–	40 किलो	500–550 क्विंटल	8–10%
2	बाजरा	जायंट बाजरा, राजको बाजरा, बायफ बाजरा	10 किलो	450–500 क्विंटल	7–9%
3	मका	आफ्रिकन टॉल, मांजरी कांपोझीट, विजय,	75 किलो	500–600 क्विंटल	9–11%
4	ओट	फुले हरिता, केंट, जे.एच.ओ. 822	100 किलो	500–600 क्विंटल	8–9%
5	बरसीम (घोडा घास)	वरदान, मेस्कावी, जे.बी. 1, जे. एच. बी. 146	30 किलो	600–800 क्विंटल	17–19%
6	लहसुन घास	आर. एल. 88, सिरसा –9, आनंद –2	25 किलो	1000–1200 क्विंटल	19–22%
7	लोबिया	श्वेता, ई. सी. 4216, बुंदेल लोबिया	40 किलो	300– 350 क्विंटल	13–15%
8	संकरीत नेपियर घास	यशवंत, फुले जयवंत	37,000 रूट स्लिप्स	2000–2500 क्विंटल	8–9%
9	स्टायलो	फुले क्रांति	10 किलो	200–250 क्विंटल	12–14%

2) कडबा कुट्टी मशीन का प्रयोग: जानवरों को हरा और सूखा चारा कुट्टी करके खिलाने के लिए कडबा कुट्टी मशीन का उपयोग करें। मशीन से चारा 2–4 सेमी के आकार का टूटता है और चारे के घाटे में कमी होती है। यह जानवरों की पाचन प्रक्रिया में सुधार करने में भी मदद करता है।

3) स्वस्थ पशु आहार का प्रयोग: दुग्ध उत्पादन के अनुसार पशुओं को स्वस्थ आहार उचित मात्रा में दिया जाय तो दूध उत्पादन बढ़ सकता है। इस के लिए उपयुक्त स्वस्थ आहार बनाए अथवा बाजार में से उपलब्ध चारे खिलाये। स्वस्थ पशु आहार बनाने के लिए गेहु या चावल का भूसा, मक्का/गेंहू/जवार/बाजरे का आटा, मूँगफली या कपास की खली, खनिज मिश्रण और नमक का उचित मात्रा मे प्रयोग करना चाहिए।

अन्न घटक	प्रमाण
गेहु या चावल का भूसा	25–30%
मक्का/गेंहू/जवार/बाजरे का आटा	20–25%
दाल चुन्नी	20–25%
मूँगफली या कपास की खली	15–20%
खनिज मिश्रण	2%
नमक	1%

4) चारा व्यवस्थापन : यदि सर्दियों के मोसम मे उपलब्ध चारा उचित तरीके से संग्रहीत किया, तो सर्दियों मे उपलब्ध चारा गर्मी में इस्तेमाल किया जा सकता है।

सायलेज तैयार करना: इस नई विधि के अनुसार, हरे चारे को संग्रहीत किया जा सकता है। सायलेज की आदत होने के बाद, यह गर्मी के दौरान संतोषजनक दूध उत्पादन में मदद करता है। सायलेज अलग अलग आकार से बना सकते है। अलग अलग आकार के गड्ढे बनाकर या अलग अलग आकार की थैली मे सायलेज बना सकते है। अपने पास उपलब्ध अतिरिक्त चारे के अनुसार गड्ढे या थैली का चयन कर सकते है।

सूखा चारा: यदि हरा चारा शुष्क करके रखें तो गर्मियों के दिनो में काम आ सकता है। सूखे घास में पानी की मात्रा 12–15 प्रतिशत होनी चाहिए। यह विधि भी चारा को बचाने में मदद करता है।

5) चारे की गुणवत्ता बढ़ाना: कम गुणवत्तावाले सूखे चारे की गुणवत्ता बढ़ाकर पशुओं को दी जानी चाहिए।कम गुणवत्तावाले चारे में प्रथिनों की मात्रा बहुत कम है। इसे बढ़ाने के लिए यूरिया के 2–3% स्प्रे करें और इसे 21 दिनों के बाद जानवरों को दें।

6) हाइड्रोपोनिक्स तकनीक: नई हाइड्रोपोनिक्स तकनीक का उपयोग करके, चारे का मिट्टी के बिना उत्पादन किया जा सकता है। संतुलित आहार कि कुल लागत को कम करने के लिए हाइड्रोपोनिक्स का इस्तेमाल किया जा सकता है। मक्का, गेहूं आदि का उपयोग करके चारा तैयार किया जा सकता है। हाइड्रोपोनिक्स तकनीक अल्प भूधारक किसानों के लिए बहुत उपयोगी है। एक किलो बीज़ से 10 किलो तक चारा तैयार हो सकता है। इससे पशुओं की हरे चारे की जरूरत पूरी होती है और साथ मे चारे मे आवश्यक घटकों की मात्रा बढ़ जाती है।

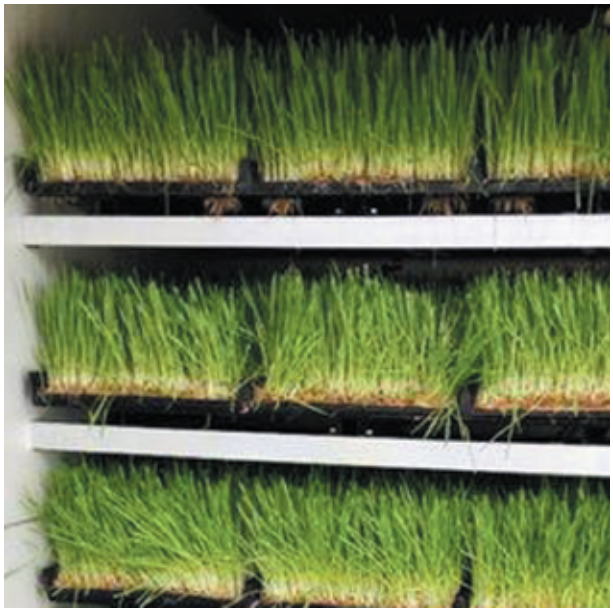

7) पूर्ण अन्न घटक ईंटें: इस नई विधि से ईंटें बनाकर और उन्हें जानवरों को पूरा आहार देने के लिए इस्तमाल किया जा सकता है। इस तकनीक का उपयोग करके चारे की बर्बादी टाली जा सकती है। पूर्ण खाद्य संघटक की तैयारी के समय कम से कम 86% सूखा चारा, 10% कालागुड, 2% खनिज मिश्रण, 1% यूरिया और 1% नमक होना चाहिए।इस तरीके से चारे का उचित संग्रह किया जा सकता है और साथ मे एक जगह से दूसरी जगहा आसानी से भेजा जा सकता है।

उपर दी गई जानकारी का उपयोग करके किसान भाई अपने पशुओं से ग्रीष्मकाल में भी उचित दुग्ध-उत्पादन ले सकते हैं।

◆ ◆ ◆

जलीय जीवन पर राष्ट्रीय नदीयों के जोड़ने की परियोजना का प्रभाव

मुकेश भेंडारकर
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान,मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

सारांश

वर्तमान लेखन में जल संसाधन मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित महत्वाकांक्षी 'नदी संधि महापरियोजना' का जलीय पर्यावरण पर संभावित प्रभावों का अवलोकन किया गया है। नदी जोड़ो परियोजना का जलजीव पर्यावरण पर सकारात्मक और साथ हि साथ नकारात्मक परिणाम भी हो सकते है जैसे कि पानी की गुणवत्ता मे परिवर्तन, जलजीव आवास के नुकसान, मत्स्य और प्रजनन क्षेत्र पर प्रभाव, प्रवासी मछली (Migratory fish) पर प्रभाव, भूमि–सागर बातचीत में परिवर्तन, मछली पारिस्थितिकी और जैव विविधता पर प्रभाव, अंतर्देशीय नेविगेशन और मछली उत्पादन पर प्रभाव हो सकता है। नदीयों को जोड़ने की परियोजना के सफल समापन के परिणामस्वरूप पानी का संतुलित वितरण और मत्स्य/जलीय जीव पालन के लिए जल संसाधन बढ़ेगा परिणामस्वरूप मत्स्य उत्पादन में वृद्धि हो सकती है और रोज़गार उत्पन हो सकता है। हालांकि, शाश्वत जलीय जैव विविधता संरक्षण के कई प्रासंगिक मुद्दों की कल्पना भी महत्वपूर्ण है। पश्चिमी घाट, हिमालय और पूर्वी घाट के उदाहरणों का हवाला देते हुए मामले विशिष्ट अध्ययन की आवश्यकता है, जो अपने अनूठे वनस्पतियों और जीवों के लिए जाना जाता है, और इस तरह के निर्माण–गहन परियोजना के कार्यान्वयन से जैव विविधता के नुकसान की संभावना बढ़ जाएगी जो समझ से परे होगी। यह एक विचारणीय सवाल है कि इंटरलिंकिंग से राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलेगी या विवाद और तनाव बढ़ेंगे। इसके अलावा, इस योजना के क्रियान्वयन से पहले उन सवालों पर भी संजीदगी से विचार करना जरूरी है, जो इसकी व्यवहार्यता, औचित्य और उपयोगिता को लेकर उठते रहे हैं।

इतिहास पर एक नजर

पानी संसाधन के क्षेत्र में भारत के पास विश्व का सिर्फ 4 फीसदी है, इतने मे ही भारत पर अपनी बढ़ती हुई आबादी जो की दुनिया की आबादी का 18 फीसद है उस में ही पानी संबंधी जरूरतों को पूरा करने का भार है। इसी को ध्यान मे लेते हुये भारत की सारी बड़ी नदियों को आपस में जोड़ने का प्रस्ताव पहली बार ब्रिटिश राज के चर्चित इंजीनियर सर आर्थर कॉटन ने 1858 में दिया था। इसके बाद, सन 1972 में डॉ. के एल राव ने गंगा और कावेरी नदी को जोड़ने का सुझाव दिया।

वर्तमान में जल संसाधन मंत्रालय द्वारा नदी के इंटरलिंकिंग कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर इसे उच्च प्राथमिकता दिया गया है। जल संसाधन मंत्रालय द्वारा तैयार राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना के अंतर्गत, एनडब्ल्यूडीए ने पहले ही हिमालयी नदियों के घटक के तहत 14 लिंक और क्षेत्रीय सर्वेक्षणों और जांच और विस्तृत अध्ययनों के आधार पर पानी के अंतर बेसिन हस्तांतरण के लिए प्रायद्वीपीय नदियों के तहत 16 लिंक की पहचान की है। इस योजना का मूल उद्देश है की उत्तर भारत का अतिरिक्त पानी मध्य और दक्षिण भारत तक पहुंचाया जाएगा।

नदी जोड़ने वाली परियोजना इस तरह से डिजाइन की गई है कि यह लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में मदद करेगी क्योंकि इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि की सुविधा होगी। इस परियोजना के पूरा होने से घरेलू उपयोग, कृषि और उद्योगों के लिए पानी की आपूर्ति नियमित रूप से होगी, बाढ़ नियंत्रण और जल प्रवाह, नेविगेशन और खाद्य सुरक्षा में सुधार के साथइन परिणामों को हासिल करने के लिए, 334 अरब घन मीटर पानी 30 निर्माण में अंतर नदी के लिंक, 36 बड़े बांध, 94 सुरंगों और 10,876 किलोमीटर नहरों के माध्यम से स्थानांतरित किया जाना चाहिए। बांधों, नहरों का निर्माण, और उनके रखरखाव से नए रोजगार के अवसर पैदा होंगे, जो गांवों से शहर के लोगों के प्रवास को जांचेंगे (अली, 2004)।

मत्स्य पालन और जलीय पर्यावरण पर नदीयों के जोड़ने की परियोजना का प्रभाव

भारत में 14 प्रमुख, 44 मध्यम नदियों और असंख्य सहायक नदियों और धारावाहिकों से विराजमान है, जो 45000 किमीसे अधिक की एक संयुक्त लंबाई के साथ दौड़ी हुई है। देश के नदी के संसाधन दुनिया के सबसे अमीर मछली जर्मप्लाजम में से एक प्रदान करते हैं। ऐसा कहा जाता है की मत्स्य पालन नदी के स्वास्थ्य का एक दर्पण है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मत्सिकी अनुसंधान संस्थान, प. बंगाल के अनुसार, नदी के पूरे जल विज्ञान चक्र में परिवर्तन से गंभीर और कठोर परिणाम प्रजातियों की उत्पती विशेष रूप से बड़े कार्प्स, जैसे मछली घर होगा। इसका सीधा असर मत्स्य

समुदायों के आजीविका पर होगा जिनकी रोजी–रोटी नदियों मे मत्स्य पालन पर निर्भर हैं। नदी जोड़ने परियोजना के मत्स्यकी पर्यावरण पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ सकते हैं।

मछली उत्पादन पर प्रभाव

नदियों के प्रस्तावित इंटरलिंकिंग परियोजना में 36 प्रमुख बांध और 30 नहरों के लिंक शामिल होंगे। इसके अलावा वहाँ अधिक सिंचाई नहरों और बैरज होंगे। ये प्रमुख जलाशयों, नहरें और अन्य जल संचयन संरचना देश के संभावित मत्स्य संसाधनों को जोड़ देगा। पानी प्राप्तकर्ता क्षेत्र में नदियों और झीलों में वृद्धि हुई पानी बारहमासी, अनुकूल आवास और फलस्वरूप उच्च तर मछलियों का उत्पादन होगा।

जल गुणवत्ता पर प्रभाव

नदी का मत्स्य पालन नदी के स्वास्थ्य का एक संकेतक है। नदी जोड़ने वाली परियोजना के कारण नदियों, तलाव, जलाशयांचे पानी, ज्वारनदमुख और तटवर्ती पानी की गुणवत्ता में वृद्धि होगी। नियमीत नदी का प्रवाह तलछट भार, पोषक घटक और दूषित घटक बदलते हैं। नदी के प्रवाह को बदलने के लिए स्वयं–शुद्धीकरण कार्य कम करने के लिए डोनर के नदियों में जहरीले पदार्थ और प्रदूषण फैलाते हैं। अत्यधिक प्रदूषित नदियों के मामले में जब ओ बड़े शहरों और शहरों के होकर गुजरेंगे औरकम प्रदूषित नदियों से जुड़ेंगे, तो पूरे देश की नदियो मे जल प्रदूषण प्रभाव दिखना शुरु हो जाएगा।

प्राकृतिक वास का नुकसान

पानी की मात्रा को कम करने और बढ़ाने के कारण तलछट भार मे बढ़ोतरी आएगी और पानी के दाता क्षेत्र में नदियों और झीलों में मछली के भोजन और प्रजनन आवास प्रभावित हो सकते हैं। नदी के प्रवाह ने बहाव के नदियां, डेल्टा और तटीय क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के लिए ऊर्जा प्रदान की है। भारत में, गंगा नदी पर फरक्का बांध का निर्माण जिसने हिल्सा, प्रमुख कार्प्स, कैटफ़िश, मीठे पानी झींगे और कई को काफी प्रभावित किया है, (त्यागी,1999)। कृष्णा नदी पर प्रकाशम बांध ने मीठे पानी के झींगे और कई मछलियों को प्रभावित किया। वेम्बनाद झील में थें इन मुकुक बांध का निर्माण, मीठे झींगा मत्स्यकी पर नकारात्मक प्रभाव डाला है।

तलछट संरचना में बदलाव

नदी के प्रवाह, तटीकरण और बांध निर्माण की वजह से ताजा पानी के प्रवाह और पोषक तत्वों का बोझ कम करने से नर्सरी क्षेत्रों को कई तरह से प्रभावित किया जाता है, जिससे खारापन बढ़ती है, भक्षक मछलियों को आक्रमण करने और उपलब्ध खाद्य आपूर्ति को कम करती है।

प्रजनन और अंडे देना के आधार में बदलाव

नदी के प्रवाह मे कमी होने से प्राकृतिक प्रजनन पर काफी असर डाला है और अवसादन बढ़ा दिया है। इससे प्रजनन और नर्सरी मैदानों के नुकसान की वजह से मछली की आबादी में तेज़ी से कमी आयेगी जिससे अंततः प्रजनन प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। जब एक बेसिन का पानी दूसरे से बदल दिया जाता है, तब मात्रा में परिवर्तन और प्रवाह के परिणाम स्वरूप नया प्रजाति प्राप्तकर्ता बेसिन पर आक्रमण कर सकता है और देशी प्रजातियों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है।

मछली प्रवासन पर प्रभाव

प्रवासी मछली को उनके जीवन चक्र के मुख्य चरणों के लिए अलग–अलग परिवेश की आवश्यकता होती है जैसे प्रजनन, छोटी मछलियों का उत्पादन, विकास और यौन परिपक्वता। भारत में प्रायद्वीपीय और हिमालयी नदियों की कई प्रजातियां प्रजनन और खाद्य पूर्ति के लिए छोटी या लंबी दूरी की ओर पलायन करती हैं। आदि लेख कहते है की अपने प्रवासी मार्गों को बदलने के परिणामस्वरूप बहुत से समुद्रापगामी मछली की आबादी (उदा। सल्मन, ईल और शेड) में गिरावट आई है।

बदलते तापमान के प्रभाव

नदी के पानी की संशोधित थर्मल और रासायनिक विशेषताएं मछली आबादी को प्रभावित कर सकती हैं। पानी के तापमान में बदलाव अक्सर मूल/देशी प्रजातियों में कमी के कारण के रूप में पहचाने जाते हैं जैसे ट्राउट्स, कॉमन कार्प और सिल्वर कार्प ने देशी महासेर, स्नो ट्राउट और इंडियन मेजर कार्प की प्रजातियों को स्थान दिया था (लाक्रा, 2010)। भारत में, 30 वर्षों के समय श्रृंखला के आंकड़ों के विश्लेषण के अनुसार गंगा नदी और जल–मंडलों में प्रकाशित साहित्य के बारे में, न्यूनतम जल तापमान में वृद्धि के बारे में संकेत मिलता है। भारत जैसे एक विकासशील देश में, ये कारक मछली जैव विविधता पर अतिरिक्त तनाव का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

परिवर्तित खारापन का प्रभाव

नदी के इंटरलिंकिंग कार्यक्रम द्वारा विनियमित पानी से संबंधित तटीय और तटीय जल के खारापन एकाग्रता में वृद्धि हो सकती है। उच्च खारापन से जुड़े जलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों में विभिन्न निवासी और प्रवासी जीवों के प्रजनन और खाद्य पूर्ति आधार को प्रभावित करते हैं। पंजाब के दक्षिणी पश्चिमी जिलों में गहन सिंचाई के कारण जल भराव और खारापन प्रभावित कृषि भूमि हुई है। पानी के अम्लीकरण के कारण लवणता में परिवर्तन भितराकानिका और सुंदरबन के मैंग्रोव वनों को प्रभावित कर रहे हैं, जो कई मीठे पानी और समुद्री मछली के प्रजनन और नर्सरी के आधार हैं।

मछली जैव विविधता पर प्रभाव

भारत में विभिन्न नदी प्रणाली दुनिया में सबसे अमीर मछली के बीज का प्लाज्म संसाधनों में से एक बंदरगाह है। गर्म स्थान क्षेत्रों, जैसे कि उत्तर पूर्व और पश्चिमी घाट में मीठे पानी की मछली की जैव विविधता 296 और 287 प्रजातियों में शामिल है, जबकि मध्य भारत की नदियों ने 166 देशी मछली प्रजातियों है (सरकार और लकड़ा, 2007)। इसमें मछली प्रजातियों का मिश्रण हो सकता है जिसके कारण अधिक जीन का प्रवाह, और नदी घाटियों के बीच कुछ इनवेसिव मछली प्रजातियों के प्रवेश परिणामस्वरूप जैव विविधता का नुकसान भी हो सकते हैं।

भूमि-सागर सहभागिता में परिवर्तन

नदियों को जोड़ना समुद्र में नदी के बहने का समय और मात्रा बदल सकता है, जो नदी–मध्यस्थता वाले समुद्र के सामुद्रिक सहभागिता और तटीय मत्स्य पालन को बदल सकता है। भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय समुद्री मत्स्यकी अनुसंधान संस्थान ने 'समुद्र में नदी के धरण का प्रभाव और तटीय जल में परिवर्तन' के अध्ययन से समुद्र में नदी के प्रवाह को कम करने की आवश्यकता है, जिससे तटीय जल के जल रसायन विज्ञान और उत्पादकता प्रोफाइल और ज्वारनदमुख मत्स्य पालन पर प्रतिकूल प्रभाव कम पड़े।

समापन

वर्तमान में, भारत दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी अंतर्देशीय मछली उत्पादक है। हालांकि, भारत में नदियो का विभिन्न समस्यायों का सामना करना पड रहा है, जैसे कि अत्यधिक प्रदुशन, अतिक्रमण, जलवायु परिवर्तन, जलग्रहण क्षेत्र में वनों कि कटाई, तटघट मे बदलाव, प्रवासन मे बाधा, नदियो मे पानी की अनुपस्थिति, बाढ़, स्थानीय समुदायों कि आजीविका को ध्यान मे रखते हुऐ जल विज्ञान परिवर्तन और मत्स्य जीव पालन के बीच संबंधो कि प्रारम्भिक और विस्तृत अध्ययन कि आवश्यकता है।

नदियों को कृत्रिम रूप से जोड़ने के महाप्रयोग का जलजीव पर्यावरण पर सकारात्मक होने के साथ–साथ नकारात्मक परिणाम भी हो सकते है। प्रस्ताव को पूरा करने से कृषि में तेजी आएगी! जलीय कृषि उत्पादन और रोज़गार पैदा करते हैं। पर्यावरण और नदी विज्ञान का मानना है कि नदियों के विज्ञान को समझ कर किया गया विकास ही निरापद तथा टिकाऊ है।

नदियों को परस्पर जोड़ने के विषय में दिनांक 28.12.2017 को लोक सभा में उत्तर दिए जाने वाले अतारांकित प्रश्न सं. 1828 के भाग (क) और (ख) के उत्तर में उल्लिखित अनुलग्नक

प्रस्तावित अंतर बेसिन जल अंतरण संपर्क से लाभ

क्र.		संबंधित राज्य	लाभान्वित राज्य	वार्षिक सिंचाई	स्थिति
प्रायद्वीपीय घटक					
1	महानदी (माणेभद्रा) गोदावरी (दालेश्वरम) संपर्क	ओडिशा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक, छत्तीसगढ़, तेलंगाना	आंध्रप्रदेश और ओडिशा	0.91+3.52=4.43	साध्यता रिपोर्ट (एफ़आर) पूरी की गई
2	गोदावरी (इंचमपल्ली) कृष्णा (पुलीचिताला) संपर्क	वही	वही	6.13	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
3	गोदावरी (इंचमपल्ली) कृष्णा (नागार्जुन सागर) संपर्क	ओडिशा, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना	वही	2.87	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
4	गोदावरी (पोलावरम)– कृष्णा (विजयवाड़ा) संपर्क	ओडिशा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना	आन्ध्र प्रदेश	5.82	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
5	कृष्णा (अलमट्टी)– पेन्नार संपर्क	महाराष्ट्र, कर्णाटक, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश,	आन्ध्र प्रदेश और कर्णाटक	1.90+0.68=2.58	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
6	कृष्णा (श्रीसेलम)–पेन्नार संपर्क	वही	–	–	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
7	कृष्णा (नागार्जुन सागर)– पेन्नार (सोमसीला) संपर्क	महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, और कर्णाटक	वही	5.81	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
8	पेन्नार (सोमसीला)– कावेरी (ग्रैंडएनीकट) संपर्क	आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु, केरल और पुदुच्चेरी	आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पुदुच्चेरी	0.49+4.36+0.06 =4.91	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
9	कावेरी (कट्टालाई)– वैगाई–गुन्डार संपर्क	कर्णाटक, तमिलनाडु, केरल और पुदुच्चेरी	तमिलनाडु	3.38	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
10	–बेतवा संपर्क	उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश	उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश	2.66+3.69=6.35	चरण–ख और खख की साध्यता रिपोर्ट और डीपीआर पूर्ण
	ख) –बेतवा संपर्क–	वही	मध्य प्रदेश	0.99	पूर्ण
11	पार्वती–कलिसिन्ध–चंबल संपर्क	मध्य, राजस्थान, उत्तर प्रदेश (उत्तर प्रदेश ने सहमहिक बनाने के समय विचार–विमर्श करने का अनुरोध किया)	मध्य प्रदेश और राजस्थान	*–lt.I: 2.05+0.25=2.30 (–lt.II: 1.77+0.43=2.20)	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई

क्र.		संबंधित राज्य	लाभान्वित राज्य	वार्षिक सिंचाई	स्थिति
12	पार–तापी–नर्मदा संपर्क	महाराष्ट्र और गुजरात	गुजरात	2.32	साध्यता रिपोर्ट और डीपीआर पूर्ण
13	–पिंजाल संपर्क	वही	महाराष्ट्र(केवल मुम्बई को जलापूर्ति)	–	साध्यता रिपोर्ट और डीपीआर पूर्ण
14	बेदती–वर्धा संपर्क	महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, और कर्णाटक	कर्णाटक	0.60	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
15	नेत्रवती–हेमावती	कर्णाटक, तमिलनाडु और केरल	कर्णाटक	0.34	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
16	पंबा–अच्चनकोविल–वैंप्पार	केरल और तमिलनाडु	तमिलनाडु	0.91	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
हिमालयी घटक					
1	मानस–सनकोस–तीत्सा–गंगा (एम–एस–टी–जी) संपर्क	असम, पश्चिम बंगाल, बिहार और भूटान	असम, पश्चिम बंगाल, बिहार	2.08+1.82+2.64=6.54	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
2	कोसी–घाघरा संपर्क	बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल	बिहार और उत्तर प्रदेश	8.17+0.671.74(नेपाल) =10.58	साध्यता रिपोर्ट पूरी की गई
3	गंडक–गंगा संपर्क	वही	उत्तर प्रदेश	37.99+2.41(नेपाल) =40.40	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई (भारतीय भाग के लिए)
4	घाघरा–यमुना संपर्क	वही	उत्तर प्रदेश	25.30+1.35(नेपाल) =26.65	एफ़आर पूरी की गई (भारतीय भाग के लिए)
5	शारदा–यमुना संपर्क	बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, उत्तराखंड और नेपाल	उत्तर प्रदेश, और नेपाल	3.45+0.30=3.75	एफ़आर पूरी की गई (भारतीय भाग के लिए)
6	यमुना–राजस्थम संपर्क	उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान	हरियाणा और राजस्थान	0.435+2.442=2.877	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई
7	राजस्थान–साबरमती संपर्क	वही	राजस्थान और गुजरात	5.352.04=7.39	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई
8	चुनार–सोन बैराज संपर्क	बिहार और उत्तर प्रदेश	बिहार और उत्तर प्रदेश	0.30+0.37=0.67	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई
9	सोनबांध–गंगा संपर्क की दक्षिणी उपनदिया	बिहार और झारखंड	बिहार और झारखंड	2.99+0.08=3.07	पीएफ़आर पूर्ण की गई
10	गंगा(फरक्का)–दामोदर–सुवर्णरेखासंपर्क	पश्चिम बंगाल,ओडिशा और झारखंड	पश्चिम बंगाल,ओडिशा और झारखंड	7.63+0.30+0.55=8.47	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई

क्र.		संबंधित राज्य	लाभान्वित राज्य	वार्षिक सिंचाई	स्थिति
11	सुवर्णरेखा–महानदी संपर्क	पश्चिम बंगाल और ओडिशा	पश्चिम बंगाल और ओडिशा	0.18+0.365=0.545	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई
12	कोसी–मोची संपर्क	बिहार, पश्चिम बंगाल और नेपाल	बिहार	2.99+1.75(नेपाल) =4.74+	पीएफ़आर पूरी की गई पूर्ण तरह नेपाल में पड़ता है
13	फरक्का–सुंदरबन संपर्क	पश्चिम बंगाल	पश्चिम बंगाल	1.50	प्रारूप एफ़आर पूरी की गई
14	जोगीघोपा–तीत्सा–फरक्का संपर्क(एम–एस–टी–जी का विकल्प)	वही	असम, पश्चिम बंगाल और बिहार	–	एम–एस–टी–जी संपर्कविकल्प छोड़ दिया गया

पीएफ़आर–साध्यता पूर्व रिपोर्ट
एफ़आर– साध्यता रिपोर्ट
डीपीआर–विस्तृत परियोजना रिपोर्ट
एसएण्डआई–सर्वेक्षण और जांच
एमसीएम–मिल्यन क्यूबिक मीटर

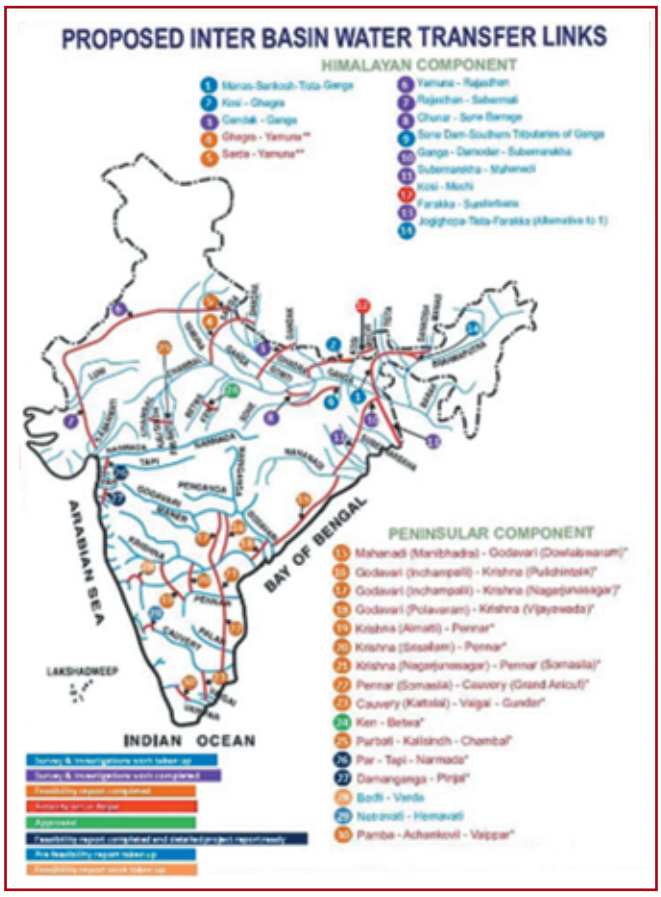

◆ ◆ ◆

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मशरुम की खेती: कृषि व्यवसाय का एक विकल्प

गोरक्ष वाकचौरे, भास्कर गायकवाड़
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

कृषि हमेशा भारतीय अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख अंग है। आज हमने कृषि फसलों की विविधता का लाभ लेते हुए, 270 लाख टन की उत्पादन और खाद्य सुरक्षा हासिल की है। हमारे पास दूध, सब्जियों और फलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। हालांकि, पोषण सुरक्षा प्राप्त करने के लिए हमारा संघर्ष अभी भी जारी है। भविष्य में, बढ़ती आबादी, कृषि क्षेत्र का विभाजन, पर्यावरण में परिवर्तन, पानी की कमी और गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पादों के लिए आवश्यक प्रतिस्पर्धा दर आदि महत्वपूर्ण मुददा होने जा रहे हैं। इन चुनौतियों का सामना और पोषण सुरक्षा प्रदान करने हेतु, कृषि के बागवानी जैसे क्षेत्रों में विविधता लाना बहुत महत्वपूर्ण है। किसी भी कृषि पद्धति में विविधीकरण स्थिरता प्रदान करता है। मशरूम एक ऐसा घटक हैं, जो न केवल विविधीकरण प्रदान करता हैं बल्कि भोजन की गुणवत्ता, स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी समस्याओं को संबोधित करने में भी सहायता करता है। मशरुम की खेती, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ कृषि–अपशिष्टों की रीसाइक्लिंग में योगदान दे सकता हैं। साथ में कृषि अपशिष्टों को मशरूम के लिए उपयोग से कृषको के आय बढ़ाने में मदद कर सकते हैं।

मशरुम की आंतरिक खेती में छोटी जगह और ऊर्ध्वाधर का पूरा इस्तेमाल होता है। मशरुम को प्रति यूनिट क्षेत्र और समय के हिसाब से, सर्वोच्च प्रोटीन निर्माण करने की क्षमता है। मशरुम, पारंपरिक कृषि और पशुपालन से लगभग 100 गुना अधिक प्रोटीन निर्माण करता है। यह उच्च तकनीक बागवानी उद्यम है, जिसके माध्यम से भूमि पर अनुचित दबाव के बिना भोजन सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। आज 100 से अधिक देशों में मशरूम खेती की जा रही है और इसके उत्पादन में हर साल 67% बढ़ोती हो रही है। मशरूम उत्पादन में विश्व के तीन भौगोलिक क्षेत्रों– यूरोप, अमेरिका और पूर्वी एशिया का योगदान लगभग 96% है। भारत में मशरूम उत्पादन प्रणाली मिश्रित (पारंपरिक एवं उच्च तकनीक युक्त) प्रकार की हैं। भारत में मशरूम की खेती 70 के दशक में शुरू हुई और आज हमारा देश लगभग 1.5 लाख टन उत्पादन करता है। भारत की विविध जलवायु परिस्थितियां (उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण) विभिन्न प्रकार के मशरूम की खेती के लिए अनुकूल है। आज, व्यावसायिक रूप से बटन, ढींगरी, दूधिया, पराली और शिटाके जैसे मशरुम की प्रजातियां महशूर हैं। भारत के समशीतोष्ण क्षेत्रों में बटन, उष्णकटिबंधीय और उप उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ढींगरी, पराली, दूधिया और अन्य मशरुम का उत्पादन किया जाता है। मौसम के अनुसार, समशीतोष्ण क्षेत्रों में तापमान का मामूली समायोजन के साथ बटन की दो से तीन फसल और उत्तर पश्चिमी मैदानी इलाकों में बटन मशरुम का एक फसल उगाया जाता है। तथापि, उष्णकटिबंधीय/उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ढींगरी, पराली और दूधिया मशरूम को अप्रैल से अक्टूबर तक उगाया जाता है। उड़ीसा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों इस तरह की उष्णकटिबंधीय/उप–उष्णकटिबंधीय मशरुम खेती के लिए लोकप्रिय है। आज व्यावसायिक रूप से हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में निर्यात के लिए गुणवत्ता वाले मशरूम का उत्पादन किया जा रहा है। देश के कुल मशरुम उत्पादन में सफेद बटन मशरूम का लगभग 85% योगदान है।

भारत, प्रतिवर्ष 700 मिलियन टन कृषि अपशिष्ट का उत्पादन करता है और इसका अधिकाश भाग स्वाभाविक रूप से विघटित होने के लिए छोड़ा दिया जाता है या जला दिया जाता है। यह प्रभावी रूप से मशरूम जैसे अत्यधिक पोषक आहार का उत्पादन

मशरुम की मौसमी खेती (बटन)

करने के लिए उपयोग में ला जा सकता हैं। मशरुम उत्पादन से निकले अपशिष्ट को कार्बनिक खाद / वर्मी–कंपोस्ट में परिवर्तित करके फसल और मिट्टी स्वास्थ्य बढ़ा सकते हैं। मशरुम की खेती मौसमी या आधुनिक तकनीक नियंत्रित कमरों में पूरे साल की जाती है। मशरूम खेती एक अत्यधिक श्रम उन्मुख उद्यम हैं। भारत में कच्चे माल और कामगार दोनो की उपलब्धता ज्यादा है, जिसका सही इस्तमाल करके मशरुम खेती की आर्थिक लाभदायकता बढ़ सकती है। इसके अलावा, औषधीय व अन्य खाद्य मशरूम जैसे की ढींगरी, शिटाके, दूधिया व रिशी की खेती से तीव्र विविधीकरण में भारतीय उत्पादकों के लिए अवसर हैं।

मशरुम का उच्च तकनीक उद्योग (बटन)

मशरूम की मिश्रित उत्पादन प्रणाली

मशरुम के विश्व व्यापार में भारत का योगदान लगभग नगण्य है, मगर कुछ मध्यम आकार के वाणिज्यिक इकाइयां, अमेरिका और ताइवान जैसे कुछ देशों में ताजा मशरूम डिब्बाबंदी के माध्यम से निर्यात कर रहे हैं। भारत, अनुकूल प्राकृतिक कृषि–जलवायु और कृषि–अपशिष्टों का एक समृद्ध स्रोत है, जिसका उपयोग विभिन्न मशरूम प्रजातियों की खेती के लिए हो सकता है। लेकिन फिर भी हमारे देश का मशरूम के उत्पादकता या उपभोक्ता के रूप में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है। भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक मशरूम की खपत (30–40 ग्राम) है, जो की विकसित देशों कि तुलना मे (2–3 किलो) बहुत कम हैं। भारत खुद एक बड़ा

बटन मशरुम

ढींगरी मशरुम

दूधिया मशरुम

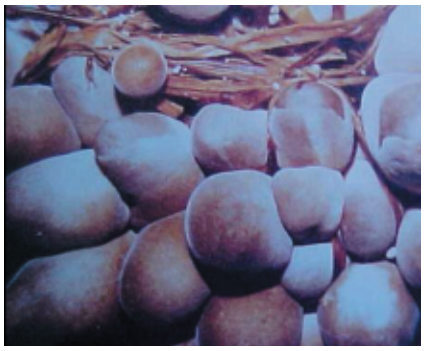

पराली मशरुम

शिटाके मशरुम

रिशी मशरुम

खाद्य व औषधीय मशरुम के विभिन्न प्रकार

बाजार है, जो मशरुम का प्रति व्यक्ति उपभोग में 100 ग्राम तक की वृद्धि ला सकता है और आंतरिक बाजार में एक लाख टन से अधिक मशरूम पैदा करने की क्षमता रखता है। आज की स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और बढ़ती आर्थिक स्थिति के कारण अधिकांश भारतीय नियमित सब्जियों के रूप में मशरूम का उपभोग कर पा रहे हैं। वर्तमान में भारत के सभी प्रमुख शहरों में ताजा / डिब्बा बंद मशरूम उपलब्ध हैं।

अगर हम सिर्फ 1% कृषि–अपशिष्टों को मशरूम निर्मिति के लिए उपयोग करते है, तो भारत 3 मिलियन टन मशरुम और लगभग 15 मिलियन टन खाद का उत्पादन कर सकता हैं। बढ़ती बेरोजगारी की समस्या को ध्यान में रखते हुए, मशरुम व्यवसाय के माध्यम से ग्रामीण और शहरी बेरोजगार युवा तथा महिलाएं रोजगार और सशक्तिकरण के साथ कृषि–अपशिष्टों का प्रबंधन कर सकता है। मशरुम सिर्फ एक ताजी सब्जी नहीं, बल्कि मशरुम से बहुत सारे मूल्य वर्धित उत्पादों जैसे कि, अचार, जैम, जेली, मुरब्बा और सुखी मशरुम की पाउडर से चॉकलेट, बिस्कुट, केक व अन्य बेकरी उत्पाद बनाये जाते हैं। इसलिए मशरुम भारत के लिए एक फायदेमंद व्यवसाय है। मशरूम स्वास्थ्य लाभ और कैंसर विरोधी प्रभाव सहित कई औषधीय गुणों से संपन्न हैं। लोगों में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और आर्थिक स्थितियों में प्रगति के कारण शहरों में मशरुम के उपभोक्ताओं में बढ़ोती हो रही है। भारत में मशरूम की बिक्री की कोई समस्या नहीं है। मशरूम उद्योग को आर्थिक सहकार्य हेतु अनेक निजी संस्था और सरकारी संगठन पूरे तरह से समर्थन कर रही है। राज्य स्तर पर मशरुम की खेती करनेवाले किसानों को शासकीय अनुदान प्रदान करने हेतु, हरयाणा सरकार ने साहसिक कदम उठाया है। इसके अलावा, देश स्तर पर राष्ट्रीय उद्यान बोर्ड, नई दिल्ली जैसी संगठन भी इस और महत्वपूर्ण काम कर रही है। मशरूम अनुसंधान और किसानो को प्रशिक्षण देने का काम मशरुम अनुसंधान निदेशालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश कर रहा है।

भारत विविध जलवायु से संपन्न है, जिसका मशरूम विविधीकरण के लिए अंतर्निहित लाभ देश के विभिन्न क्षेत्रों और मौसमों में हो सकता है। यही कारण है कि, भारत में विभिन्न प्रकार के खाद्य और औषधीय मशरूम पैदा करने की अत्याधिक क्षमता है। मशरूम की गुणवत्ता के आधार पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में मशरूम की मांग बढ़ रही है। मगर आज भी घरेलू और निर्यात दोनों बाजारों में सफल होने के लिए गुणवत्ता वाले ताजे मशरूम और कीटनाशक अवशेषों से रहित उत्पादों और प्रतिस्पर्धी दर पर उत्पादन करना आवश्यक है। इस के साथ, मशरुम उत्पादन के बाद निकले हुए, अपशिष्टों को अतिरिक्त आय के लिए खाद, वर्मी कंपोस्ट, जलने के लिए ब्रिकेटस आदि का व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल करना भी महत्वपूर्ण है।

◆ ◆ ◆

कार्प मछलीयों की अर्ध-संघन (सेमि-इंटैन्सिव) खेती

नीरज कुमार, के के कृष्णनी, परितोष कुमार, एन पी सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

भारत में खाद्य समृद्धि के बावजूद जनसंख्या वृद्धि के कारण भारत देश में खाद्यान्न कमी लगातार बनी हुई है। ऐसे मे हमारा दायित्व बनता है कि हम खाद्य उत्पादन अधिक से अधिक बढ़ाएं। मछली पालन एक साधन है जिससे हम अपने देश का खाद्य उत्पादन बढ़ा सकते है। यह हमारे देश मे सदियों से चली या रही एक सुंदर प्रणाली है। खाद्य उत्पादन बढ़ाने के क्षेत्र में अर्ध–संघन बहुत ही सार्थक है, और वैज्ञानिक इस ओर बहुत तेजी से काम कर रहे है। इस तकनीक के अलग अलग पहलुओं को बहुत तेजी से सुधारा गया है ताकि इसकी उत्पादनशीलता को बढ़ाया जा सके। आज से दो दशक पहले परंपरागत तरीके से कार्प मछलीयों की खेती से सिर्फ 500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष का उत्पादन होता था लेकिन आज हमारे देश मे ये बढ़कर 15000–20000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष कर पहुँच गया है। हमारे मत्स्य वैज्ञानिकों ने जल कृषि मे कई तकनीक विकसित किया है जिसमे लघु, अर्ध–संघन और संघन प्रणाली विकाश सामिल है। आज भी हमारे देश बहुत ऐसे राज्य है, जहाँ आज भी किसान पुरानी पद्धति से खेती कर रहे हैं। वही बहुत सारे राज्य आधुनिक तरीके से खेती कर रहे हैं जिसमे आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, गुजरात, बिहार, झारखंड के नाम सर्वोपरि हैं। मत्स्य वैज्ञानिक किसानों को अर्ध–संघन प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित करते है क्यूंकी इस प्रणाली से संसाधनो के अनुकूलतम उपयोग के साथ साथ वातावरण की स्वच्छता भी बनी रहती है और इसके साथ साथ किसानों को अच्छा लाभ भी मिलेगा। अर्ध–संघन खेती के लिए कुछ रूपरेखा नीचे प्रस्तुत की जा रही है:

1.1 जलीय पौधा को निकालना

जलीये पौधों कों हाथों द्वारा निकालना सरल होता है। इसे रासायनिक तरीके से भी हम बाहर निकाल सकते है, जिसमे विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है। जैविक तरीके के रूप मे ग्रासकार्प (200–250 ग्राम) का उपयोग किया जाता है और उसमे बहुत असरदार होता है।

तालिका: अर्ध-संघन प्रणाली के लिए जलीय पेढ निकालने के लिए रसायनो का नाम

क्रमांक	रसायन का नाम	खुराक
1	2, 4,D	2–10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
2	अमोनिया	10–15 मिलीग्राम
3	पाराकट	
4	दिउरोन	

1.2 तालाब की बनावट

तालाब की बनावट के लिए अर्ध–संघन प्रणाली मे आधे आधे हेक्टेयर के तालाब चुनना चाहिए जिससे हवा की दिशा के बांध अधिक मजबूत होना चाहिए, जिससे तेज हवा के झोको मे खराब न होने पाये।

1.3 अनचाही मछलीयों को निकालना

अनचाही मछलीयां खेती के लिए उपयोग नहीं मानी जाती हैं क्योंकि ये जगह घेरने के साथ साथ ये नयी डाली गयी मछलीयों को भी खा जाते हैं। इसलिए इन्हें मछ्ली के बीज डालने के पहले निकाल लेना चाहिए। इसके लिए पहले तालाब का पानी खाली करना चाहिए और बार बार जाल लगाना चाहिए और रसायन का भी उपयोग करना चाहिए।

तालिका : अर्ध-संघन प्रणाली के लिए पर तथा अनचाही मछलीयों को निकालना के लिए रसायनों का नाम

क्रमांक	रसायन का नाम	खुराक
1	ब्लीचिंग पाउडर	150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
2	यूरिया	150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
3	महुआ ऑइल केक	2500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
4	टी सीड केक	15–20 पीपीएम
5	डेररिस पाउडर	4–21 पीपीएम
6	क्रोटोन तिगलिउम	3–5 पीपीएम
7	तमरिन्डसीड केक	175–200 पीपीएम
8	चुना और अम्मोणिउम सल्फ़ेट	60 पीपीएम
9	अमोनिया	20–25 पीपीएम

बीज संचयन से पहले खाद के रूप मे तालाब मे 10 टन प्रति हेक्टेयर से गोबर का प्रयोग करना चाहिए, इससे पानी मे जैविक आहार बनता है।

1.4 बीज संचयन

बीज संचयन के लिए मछलियों के बीज पास के सरकारी और गैर सरकारी मछली बीज केन्द्र से सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। नीचे दिये गए मछलीयों के अनुसार ही संचयन करना चाहिए। बीज संचयन हेतु दस ग्राम के फिंगरलीग का प्रयोग किया जाना चाहिए।

तालिका 3: अर्ध-संघन प्रणाली के लिए मछलीयों की वैज्ञानिक तरीके खेती लिए से समिश्रण

मछली	3-प्रजाति समिश्रण	4- प्रजाति समिश्रण	6- प्रजाति समिश्रण
	अनुपात संख्या	अनुपात संख्या	अनुपात संख्या
रोहू	3000	3000	2000
कतला	4000	3000	1500
मृगल	3000	2000	1500
सिल्वर कार्प	–	–	1500
ग्रास कार्प	–	–	1500
कॉमन कार्प	–	2000	2000

रोहू

कतला

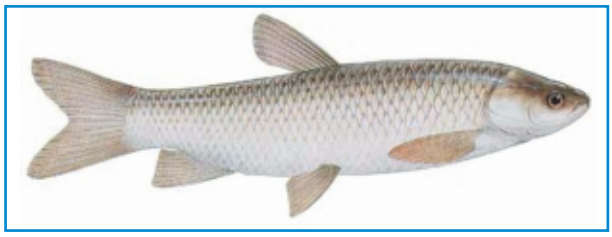

मृगल

कॉमन कार्प

सिल्वर कार्प

ग्रास कार्प

1.5 आहार

कार्प मछलियों के लिए आहार के रूप मे प्राकृतिक वनस्पति तथा जन्तु पलवक देना चाहिए, इसके अलावा राइस ब्रान और खली 1:1 के अनुपात मे दिया जाना चाहिए। संचयन मछलीयों को उनके शरीर का 3% आहार देना चाहिए। आहार सुबह और शाम दो भागो मे बाँट कर देना चाहिए।

1.6 तालाब की मिट्टी व पानी की गुणवत्ता की जाँच

तालाब की जैविक परिस्थिति, मछलियों के जीवन जैविक क्रियाओं व उनके उत्पादन के अनुकूल है या नहीं इसके लिये सबसे पहले तालाब में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा के घुलित आक्सीजन की स्थिति, विषैली गैसों की मात्रा तथा प्राकृतिक भोजन की स्थिति का ज्ञान आवश्यक है ताकि उसके अनुसार उचित प्रबन्धन करके उनमें गुणवत्ता सुधार किया जा सके। मिट्टी व पानी के जिन प्रमुख भौतिक व रासायनिक गुणों की जांच करनी चाहिये व निम्न है:

मिट्टी की संरचना

तालाब की मिट्टी तभी अच्छी मानी जाती है जब उसमें उपस्थित आवश्यक खनिज लवणों की उपलब्धता सदैव बनी रहे। एक आर्दश तालाब में न तो बलुई मिट्टी होनी चाहिये और न काफी चिकनी मिट्टी अन्यथा या तो पानी रिसता रहेगा या उसमें उपस्थित पोषक तत्व पानी में विसरित नहीं होगा। रेतीली व कंकरीली भूमि को छोड़कर छोटे कणों वाली मिट्टी जिसमें सिल्ट व क्ले कम से कम 60 प्रतिशत हो जल कृषि के उपयोग में लाई जा सकती है। मिट्टी की जल धारण क्षमता अच्छी होनी चाहिये।

मिट्टी की उर्वकता

तालाबों की मिट्टी पोषक तत्वों की खान है एवं उससे पानी को पोषक तत्वों की प्राप्त होती है। मिट्टी से प्राप्त पोषक तत्वों के

कारण ही तालाब में मछली का प्राकृतिक आहार, सूक्ष्म वनस्पति प्लवक (फाइटोप्लैकटान) व जीव सूक्ष्म प्लवक (जू. प्लैक्टान) बनता है।

पोषक तत्वों का पुर्नचक्रण

मिट्टी अच्छी तभी मानी जाती है जब उसमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थो का पुर्नचक्रण तीव्रता से हो तथा पोषक तत्व पानी में धीरे–धीरे विसर्जित हो। कार्बिनिक पदार्थो का खनिजीकरण न होने से वहां का वातावरण मछलियों में बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म जीवियों के अनुकूल होने लगता है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थो के पुर्नचक्रण न होने से वहां पर विषैली गैंसों जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड, मीथेन, अमोनिया आदि की अधिकता हो जाती है, जिसका प्रभाव मछलियों की वृद्धि पर पड़ता है।

मिट्टी की उत्पादकता

मिट्टी की उत्पादकता उसके पी.एच., नाइट्रोजन, कार्बनिक कार्बन, कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात, फास्फोरस आदि के ऊपर निर्भर करती है। अतः मिट्टी का वैज्ञानिक प्रबन्ध करने के लिये इन कारकों का ज्ञान जल कृषक के लिये आवश्यक है। मिट्टी व पानी की अम्लीयता व क्षारीय दशा को बताने वाला सूचक पी.एच.है जो उसकी उर्वरकता स्तर को बताता है। पी.एच.मान 7 उदासीन अवस्था का सूचक है 7 के नीचे की अवस्था आम्लीय तथा ऊपर की अवस्था को क्षारीय माना जाता है। मछलियों के लिये अम्लीयता व अधिक क्षारीय अवस्था प्रतिकूल होती है। अच्छी उत्पादकता के लिये पी.एच. 7.0 से 8.0 उपयुक्त हेाता है।

चूनाकरण

चूना का उपयोग जल कृषि में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये किया जाता है। चूना मिट्टी के पी.एच.को बढाता है, कार्बनिक पदार्थो का विघटन करता है तथा विषैली गैसों का बाहर निकाल कर तालाब की तली की विषाक्ता दूर करता है। यह रोगाणुओं को नष्ट कर वातावरण को रोग मुक्त भी करता है।

उर्वरकीकरण

उर्वरकों व कार्बनिक खादों की किस्म व उचित मात्रा मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। अधिक मछली उत्पादन कार्बनिक खादों व अकार्बनिक उर्वरकों के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है। मिटटी की गुणवत्ता का असर मछली के उत्पादन पर पड़ता है। अतः नियमित अन्तराल पर उसकी जांच प्रयोगशाला में कराते रहना चाहिए।

जलीय तापमान

मछलियों के शरीर का तापमान सदैव जलीय तापमान से प्रभावित होता है। जलीय तापमान कम होने से इनके शरीर का तापमान कम तथा अधिक होने से अधिक हो जाता है। कार्प मछलियों के लिये पानी का तापमान 24–30 डिग्री सें0 अनुकूल है। मछलियों में ताप जनित बीमारी, अधिक गर्मी व ठंड़क के दिनों में होती है। तालाबों में छाया की उचित व्यवस्था व पानी के वायुकरण से मछलियों को तापजनित समस्याओं से बचाया जा सकता है।

घुलित आक्सीजन

मनुष्यों के लिये आक्सीजन गैस का जितना महत्व है उतना ही मछलियों के लिये भी है। मछलियाँ पानी में घुलित ऑक्सीजन अपने गलफडे द्वारा लेती है। ऐसे तालाबों में जहां जीव जन्तुओं, शैवाल व खरपतवार की अधिकता होती है, घुलित ऑक्सिजन की मात्रा कम हो जाती है। ऑक्सिजन की कमी से मछलियों की सामुहिक मृत्यु हो सकती है। जल में घुलित ऑक्सिजन की मात्रा 5 मि.ग्राम प्रति लीटर से अधिक होनी चाहिए ताकि मछलियों को सांस लेने में कोई परेशानी न हो।

विषैली गैस

मछलियों के स्वास्थ्य पर पानी में उपस्थित विषैली गैसों विशेषकर कार्बन डाई ऑक्साइड, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड व मीथेन का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन गैसों की अधिकता से उनकी मृत्यु भी हो सकती है।

1.7 मछलियों में मुख्यत: पाये जाने वाले रोग

रोग ग्रस्त मछलियों के लक्षण और रोग के कारण

1. परजीवी जनित रोग
2. जीवाणु जनित रोग
3. कवक/फफूंद जनित रोग
4. वाइरस जनित रोग

मछलियों के सेवन से फायदे

मछली खाने से शरीर को कई सारे स्वास्थ्य लाभ होते हैं। इसलिये अपने आहार में मछली को जरुर शामिल करना चाहिये। मछली खाने के बहुत सारे स्वास्थ्य लाभ हैं,

विटामिन सी

मछली में प्रचुर मात्रा में विटामिन सी होता है जिससे स्वास्थ्य से संबन्धित बीमारियां दूर होती हैं।

प्रोटीन की प्रचुर मात्रा

मछली में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है और इसलिए मछली को बच्चों तथा बड़ों सभी प्रोटीन के लिए खाना चाहिए।

कम वसा

मछली में बहुत ही कम वसा होता है। इसे खा कर आपको शक्ति तो मिलेगी पर वसा नहीं।

खनिज स्रोत

मछली में बहुत सारे खनिज पाया जाता है जैसे आयरन, जिंक, आयोडीन, पोटैशियम, कैल्शियम और सेलेनियम, जो शरीर को मछली खाने से प्राप्त होता है।

कैंसर से बचाव

आजकल कैंसर जैसी घातक बीमारियां होने लग गई हैं, जिसका इलाज भी मछली में है। माना जाता है कि मछली में एंटीऑक्सीडेंट काफी मात्रा में पाया जाता है जो कि कैंसर से लड़ने मे मददगार होता है।

दिमाग के लिए अच्छा होता है

मछली और मस्तिस्क का एक अच्छा मेल देखा गया है। अगर आप नियमित रूप से मछली को अपने भोजन में शामिल करेंगे तो इससे मस्तिस्क का विकास अच्छा होता है।

1.8 मछलियों का कुल उत्पादन

मछली को तालाब से सुबह निकालना बहुत ही उतम होता है, क्यूँकि सुबह तापमान कम होता है । मछलियों को कई किस्तों मे निकालना चाहिए और इसकेलिए ड्रग नेट का प्रयोग करना चाहिए ।पूर्णतः मछलीको तालाब से निकालने के लिए पूरा पानी निलकलना बेहतर होता है क्यूँकि इसके दो फायदे है, जिसमे मछलियों को पूर्णतः हम निकाल सकते है और दूसरा सूर्य की रोशनी से तालाब के अंदर की मिट्टी बेहतर हो जाती है ।

1.9 लाभ

इस प्रणाली के तहत खेती करने से 1.5 से 2 लाख रुपया तक का मुनाफा होता है

◆ ◆ ◆

पेशेवर स्वास्थ्य खतरों, कृषिरत महिलाओं कि कठिन श्रम और उनके प्रबंधन के तरीके

प्रगति किशोर राउत, ज्योति नायक, गायत्री महराना, अतुल चेतन हेम्रम, म्हात्रे चैश
भाकृअनुप– केंद्रीय कृषिरत महिला संस्थान, भुबनेश्वर, ओडिशा

कहा जाता है कि स्वास्थ्य ही धन है। हर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने और जीने का अधिकार है। किसी भी व्यवसाय से अगर किसी भी प्रकार कि समस्याएँ को उत्पन होती है, उन व्यवसायों पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है, तकि उन्हें कम किया जा सके। कृषिरत व्यवसायों का छोटे–छोटे शारीरिक समस्यायों पर लम्बे समय तक प्रभाव रहता, जो आगे चल कर एक लाइलाज बीमारी का रूप लेता है। व्यावसायिक खतरों के, अंतर्गत जो आदमी, मशीन या पर्यावरण के नुकसान का कारण बनता है। व्यावसायिक खतरा श्रमिको के स्वास्थ्य की चिंता का कारण है, जो चोट या बीमार स्वास्थ्य, संपत्ति को नुकसान, या कार्यस्थल के माहौल या सभी के सयोंजन को क्षति पहुंचाने की क्षमता रखने का स्रोत या स्थिति होती है।

भारत में कृषि के क्षेत्र में महिलाओं के योगदान 42% के बाराबर है। खेती के उपकरण और औजार का निर्माण केवल पुरुषो को ध्यान मे रख कर अनुसंधान, संगठनों और राज्यकिय कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित किया गया है। केवल यह ही नहीं, उंचे भुगतान देने वाले रोजगार की ओर पुरुषों का पलायन, पारंपरिक रूप से पुरुषों द्वारा किए जाने वाली गतिविधियों को भीमहिलाओं द्वारा किया जा रहा है। इस प्रकार; ग्रामीण भारत कृषि क्षेत्र स्त्रीकरण के दिशा मे बढ़ने की एक प्रक्रिया दिखाइ दे रही है। हाल ही में, कृषि में महिलाओं की भूमिका को तेजी से समझा, माना और अनुसंधान विस्तार नीतियों और कार्यक्रमों के द्वारा संबोधित जा रहा है। ज्यादातर रोपाई, कटाई, पोस्ट हार्वेस्ट मैनेजमेंट और पैकेजिंग जैसी सभी कृषि कार्य महिलाओं के द्वारा किया जाता है। कृषि मे होने वाली कठिन परिश्रम को कम करने से पहले, महिलाओं का सशक्तीकरण जरुरी है। इस सशक्तीकरण प्रक्रिया में, महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनना है जो उन्हें के लिए व्यक्तिगत निर्णय, शिक्षा, गतिशीलता, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक भागीदारी, सार्वजनिक तौर पर बोलने और अपने अधिकारों के बाबत जागरूक रहने में मदद करेगा।

ग्रामीण महिला कृषि और कृषि सम्बन्धि क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में उनकी भागीदारी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। वर्ष 2012के लिए जनगणना के आंकड़ों के अनुसार महिलाओं के भागीदारी 55% थी जो वर्ष 2025 तक 65% होने का अनुमान है।

कृषिरत महिला के सन्दर्भ मे विभिन्न कृषि कार्य

कृषिरत महिलाओं कृषि, खाद्य सुरक्षा, बागवानी, प्रसंस्करण, पोषण, रेशम कीट पालन, मत्स्य पालन, और अन्य सम्बन्धि क्षेत्रों में शामिल हैं। आम तौर पर कठिन श्रम, शारीरिक और मानसिक तनाव, दर्द, थकान, एकरसता और इंसान द्वारा अनुभव की गयी कठिनाई जो पुरुषों और महिलाओं मे एक समान रूप से कार्य कौशल मे गिरावट का मुख्य कारण के रूप में देखा जाता रहा है। यह चिंताजनक है, की अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य, बेरोजगारी, न के बराबर तकनीकी जानकारी ने महिलाओं को लाचार कर रखा है। कृषिरत महिलाये अपनी क्षमता से परे कठिन शारीरिक श्रम करती है। और अभी भी समाज में कृषि उद्योग को सबसे कठिन उद्योग के रूप में जाना जाता है, जिसके लिए कुछ अन्य कारण होते हैं, ये कुछ इस प्रकार है:

I. कृषि गतिविधियों की मौसमी प्रकृति, गर्मी, बारिश या सर्दी की अपेक्षा किये बिना
II. पारंपरिक तरीके, जो समय खपत करता है और श्रमसाध्य है
III. तकनीकी ज्ञान के बिना यंत्रीकरण में वृद्धि
IV. कीटनाशकों और कृषि रसायनों का अनआवश्यक उपयोग में वृद्धि
V. गैर श्रम दक्ष उपकरणों का प्रयोग जो परिश्रम को और जटिल और कठिन बनाती है
VI. मजदूरों मे शिक्षा और स्वास्थ्य के खतरों की जानकारी का अभाव

कृषि क्षेत्र मे प्रतिदिन के काम के दौरान कई दुर्घटनाएँ हो रही हैं। पर्याप्त और सही तकनीकी ज्ञान के साथ फार्म मशीनरी उपकरणों का उपयोग के द्वारा कृषि व्यावसायिक स्वास्थ्य के खतरे को कम किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के कृषिरत् व्यावसायिक स्वास्थ्य खतरे

I. यांत्रिक खतरा, खराब डिजाइन और/या ढके हुए कृषि उपकरण दुर्घटनाओं और म्रुत्य का एक प्रमुख कारण है। काटने वाले उपकरणों से भी घायल होने का बड़ा जोखिम बना रहता है।

II. मनोवैज्ञानिक सामाजिक खतरा, कम वेतन, यौन और अन्य उत्पीड़न, नौकरी की असुरक्षा, खराब पदोन्नति तंत्र, वेतन के भुगतान में देरी।

III. कार्य संगठन का खतरा, असंगठित काम और अधिक काम, अत्यधिक ओवरटाइम, अकेले मे काम, काम पर नियंत्रण की कमी।

IV. एर्गोनोमिक खतरा: ये खतरे स्थायी चोटों और विकलांगता का कारण बन सकता है। उदाहरण हेतु; बुरी डिजाइन की मशीनरी, लंबे समय तक एक ही स्थिति मे रह कर काम करना, कामो का दोहराया जाना, अनुपयुक्त उपकरणों का इस्तेमाल, बैठने के खराब व्यवस्था।

V. जैविक श्रमिको को कार्यस्थल पर संक्रमण और परजीवो का खतरा बना रहता है। पशु उत्पादों और श्रमिकों के साथ काम कर रहे व्यक्तियों को जैविक खतरों की संभावना बनी रहती है।

VI. रासायनिक अधिकतम सीमा मात्रा से बढे हुआ सांद्रता के सम्पर्क में आने से साँस लेना, सेवन करने पर विषाक्तता, त्वचा संक्रमण और कैंसर रसायन का जोखिम बना रहता है ।

कृषिरत खतरों के कारण

I. अकुशल चालक।

II. तकनीकी ज्ञान का अभाव।

III. उच्च गति जो अस्थिर करता है।

IV. कृषि यंत्रो की अनुचित जुड़ाई।

V. माल की ओवरलोडिंग।

VI. ट्रैक्टर से जिन्दा भार ढोना।

VII. ढलान पर इंजन बंद करना।

VIII. खाली भागों का ना ढका होना।

XI. उचित प्रशिक्षण / अभिविन्यास का अभाव।

X. श्रमिकों का अनुचित पहनावा।

XI. सुरक्षात्मक कपड़ो का ना पहना।

XII. धूल लिप्त वातावरण।

व्यावसायिक स्वास्थ्य खतरों को कम करने के तरीके

I. **खतरनाक उपकरणों के उन्मूलन:** खेत मे काम करते वक़्त खतरनाक उपकरण से परहेज करना व्यावसायिक जोखिम को नियंत्रित करने के लिए सबसे अच्छा तरीका है।

II. **खतरनाक उपकरणों के प्रतिस्थापन:** रासायनिक कीटनाशकों के बजाय जैविक/जैव कीटनाशक का उप्योग पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण समस्याओं और रासायनिक कीटनाशकों के साथ जुड़े स्वास्थ्य के जोखिम को कम करता है।

III. **खतरों के अभियांत्रिकी नियंत्रण:** अभियांत्रिकी नियंत्रण कार्य क्षेत्र या प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से परिवर्तन कर जोखिम को कम करना है।

a. संलग्न खतरा: घूर्णन भागों सुरक्षा गार्ड द्वारा बन्द किया जा सकता है।

b. पृथक खतरा: इंटरलॉक, मशीन की रखवाली, वेल्डिंग पर्दे और अन्य तंत्र के साथ खतरा के अलगाव।

c. रीडायरेक्ट/खतरा निकालें: निकास वेंटिलेशन के साथ खतरा हटाने या पुनर्निर्देशन करना।

d. दफ्तर में नया स्वरूप: श्रमदक्ष चोटों को कम से कम करने के लिए कार्य स्थल के स्वरूप मे बदलाव।

IV. **खतरों का प्रशासनिक नियंत्रण:** इंजीनियरिंग नियंत्रण के संभव नहीं होने पर, प्रशासनिक नियंत्रण लागू करने पर विचार करें। प्रशासनिक नियंत्रण के शामिल कुछ उदाहरण:

a. उच्च कंपन, ध्वनि या धूल जैसे खतरों को नयुंतम समय तक सम्पर्क रखना

b. कर्मचारियों के लिए संचालन प्रक्रियाओं का लिखित निर्देशन

c. कर्मचारियों के लिए सुरक्षा और स्वास्थ्य नियमों का लागु होना

d. अलार्म, संकेत और चेतावनी देने वाले उपकरण का इस्तेमाल

e. साथी / र्स कर्मि प्रणाली

f. प्रचालको की प्रशिक्षण

V. **खतरों से बचने के लिए व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण :** सभी उपायो के विफल होने पर ऑपरेटर की सुरक्षा को ध्यान मे रख कर एप्रन, चश्मे, मास्क, जूता, हेलमेट/टोपी आदि का उपयोग करना चहिये जिन्हे व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण के रूप में जाना जाता है।

नियमित जांच और रखरखाव

कार्यस्थल में उपकरणों के खराब होने या अचानक किसी दुर्घटना के घटने से गंभीर खतरा पैदा हो सकता है। उपकरण एक नियमित अंतराल में नियमित रूप से जांच कर बनाए रखा जाना चाहिए। रख रखाव के लिये एक लिखित अनुरक्षण कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये और इस प्रक्रिया के पालन ना होने पर दोषपूर्ण कार्यकर्ताओं के खिलाफ कार्रवाई कि जानी चाहिए। सुरक्षा के र्ल जे से बाहरी जांच एजेंसी द्वारा मशीन की जांच होनी चाहिए।

बदलाव का संचालन

परिवर्तन कार्यक्रम क्रमादेश द्वारा उपकरण या प्रक्रियाओं में कोई भी संशोधन की समझ और नियंत्रण को सुनिश्चित कर पूरे कर्मचारी समुह को प्रशिक्षण दी जानी चाहिये। उपकरण या प्रक्रिया की सुरक्षा प्रक्रियाओं को बदले जाने के अनुसार संशोधित किया जाना चाहिए।

व्यावसायिक/पेशेवर स्वास्थ्य कार्यक्रम

एक व्यावसायिक स्वास्थ्य कार्यक्रम, स्वास्थ्य केन्द्रों या गैर सरकारी संगठनों की मदद से संचालन करना चाहिए जिससे चोटों, बीमारियों और संभावित स्वास्थ्य समस्याओं को प्रभावी ढंग से नियंत्रित और निगरानी करने मे सक्षम बनाता है। चिकित्सा और प्राथमिक चिकित्सा सेवाओं आपातकालीन रूप मे इस्तेमाल के लिए कार्यस्थल पर उपलब्ध होना चाहिए। सभी कर्मचारियों, के लिए चिकित्सा स्क्रीनिंग का आयोजन किया जाना चाहिए। नियोक्ता को सभी कर्मचारियों के मेडिकल रिकॉर्ड रखना चाहिए और इसे नियमित रूप से बनाए रखा जाना चाहिए। यह कर्मचारी और साथ ही नियोक्ता दोनो के लिए ही लाभदायक है।

आपातकालीन योजना

आपातकालीन स्थिति के लिए प्रभावी योजना खतरे को नियंत्रित करने और कर्मचारीयों को चोटों से बचाने का एक और तंत्र है। लिखित आपात योजना मानको का पालन किया जाना चाहिए। जहां रसायनों द्वारा संक्रमण की गुंजाइश हो वहां, आंखो को धोने और नहाने की व्यवस्था स्थापित किया जाना चाहिए। दमकल विभाग, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन केंद्र या किसी भी गैर सरकारी संगठनों के साथ मिल कर आपातकालीन अभ्यास आयोजित किया जाना चाहिए। आपातकालीन नम्बर्स् नियमित रूप से जरुरत अनुसार बदलते रहना चाहिये।

सुझाव

निम्नलिखित सुझाव कृषिरत महिलाओं के व्यावसायिक स्वास्थ्य उत्पिड़न को कम करने के लिए दिया जा सकता है:

1. पहले से ही विकसित विभिन्न कृषि उपकरणों और हस्त चालित उपकरणों की उपयुक्तता और उत्पादकता को कृषिरत महिलाओं के सन्दर्भ् बदलने और हर क्षेत्र में लोकप्रिय बनाने की जरूरत है।
2. पारंपरिक रूप से और आराम से खेत मे काम करती कृषिरत महिलाओं को औजार से प्रतिस्थापित करने की जरूरत नहीं है।
3. भारतीय मानवशास्त्रीय डेटा कृषि औज़ारों के विकास/शोधन/संशोधित करने के लिए उपयोग किया जाना चाहिये।
4. कृषि औजार और उपकरणों मे महिलाओं के अनुकूल सुधार कठिन परिश्रम को कम करने के साथ कृषिरत महिलाओं की कार्य कुशलता को बढ़ाने की क्षमता पर ध्यान देने की जरुरत है।
5. कृषिरत महिलाओं के एर्गोनोमिकल तत्वों पर ध्यान केंद्रित के लिए बिजली संचालित औजार का विकास या बदलाव कर कृषिरत महिलाओं को अधिक विकल्प उपलब्ध कराने की जरुरत है।

◆ ◆ ◆

कैनोपी तापमान : सूखा सहिष्णुता वाली फसलों के चयन में उपयोगी

महेश कुमार, जगदीश राणे, योगेश्वर सिंह, रामलाल चौधरी, ए के सिंह, एन पी सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

1. परिचय

हमें सूखे के प्रति सहिष्णुता वाली फसलों की आवश्यकता है, क्योंकि भारत में कृषि भूमि के 68% से अधिक क्षेत्र में सूखे का प्रभाव रहता है। तथापि, सूखे की अवधि तथा इसकी तीव्रता में वर्षा के आधार पर काफी भिन्नताएं होती हैं। उन फसलों को सूखा सहिष्णुता वाली फसलें वैसी फसलें' होती हैं, जो विकास के दौरान मृदा में नमी की कमी को सह सकती हैं और असहिष्णुंता वाले किस्मों से अधिक उपज देती हैं। जलीय स्ट्रैस के प्रतिकूल प्रभाव से बचने योग्य अंतरनिहित गुणों से इस प्रकार की फसलों की पहचान होती है। जलीय स्ट्रैस के दौरान मृदा की गहराई वाली परतों से कुशलतापूर्वक जल प्राप्त कर चंदोवा (कनोपी) को ठंडा रखना भी एक व्यस्थापन है। ये फसलें चंदोवा को ठंडा रखने के लिए विशिष्ट परंध्रों से जलीय वाष्पव उत्सर्जित करते हैं इस प्रक्रिया को वाष्पोत्सर्जन कहा जाता है और इन विशिष्ट रंध्रों को स्टोमाटा कहा जाता है। इस प्रकार सूखे के प्रति सहिष्णुता की क्षमता का निर्धारण उनके चंदोवा तापमान से किया जा सकता है। चंदोवा तापमान पादप प्रजातियों के कार्यिकीय गुणों को आनुवंशिक रूप से नियंत्रित करता है। वाष्पीकरणीय शीतलन में चंदोवा का सतही तापमान वाष्पोत्सर्जन की मात्रा से जुड़ी हुई है। सामान्यत: चंदोवा तापमान को विशेषकर स्ट्रैस नैदानिकी तथा स्ट्रैस अनुकूल जीन प्ररूपों के प्रजनन चयन में: (ळ) सूखे की स्थितियों में यह मृदा की भीतरी सतह से जल लेने की क्षमता और एग्रोनोमिक जल उपयोग दक्षता; (ळळ) सिंचाई की स्थितियों के अंतर्गत यह प्रकाशसंश्लेषण क्षमता, सिंक स्ट्रैंथ और – आनुवांशिक पृष्ठभूमि, पर्यावरण एवं विकासात्मक अवस्था के आधार पर वास्कुमर क्षमता, और (ळळळ) ताप स्ट्रैस की स्थितियों के अंतर्गत यह वस्कुलेर क्षमता कूलिंग मेकानिजम एवं ताप अनुकूलन के आधार पर निर्धारित होती है। हैंड हैल्ड् इंफ्रारेड थर्मामीटर (खठढ) सीधे तौर पर और फसल को विचलित किए बिना चंदोवा तापमान को आसानी से माप सकता है। इंफ्रारेड रेडिएशन भी एक प्रकार का इलेक्ट्रो मेग्नेटिक रेडिएशन है, जो किसी भी वस्तु के सतही तापमान को मापता है। सामान्यत: मापा गया तापमान, सतह से विकीर्ण इंफ्रारेड रेडिएशन के परिमाण के अनुपात में होता है। इसी सिद्धांत से हाल ही में इंफ्रारेड इमेजिंग सिस्टम का विकास किया गया और पौधों के चंदोवा तापमान के मूल्यांकन में उपयोग किया जाने लगा है। इंफ्रारेड थर्मामीटरी या इंफ्रारेड थर्मोग्राफी लक्षित वस्तु का तापमान वस्तुओं द्वारा विकीर्ण रेडिएंट थर्मल एनर्जी के माप से करता है। जिन वस्तुओंमें तापमान होता है वे इलेक्ट्रोपैरामेग्नेरटिक रेडिएशन फैलाती हैं जिसे इंफ्रारेड कहा जाता है। 8 से 13 माइक्रोमीटर इंफ्रारेड स्पैडक्ट्रंल रीजन को विशेष रूप से थर्मल रिमोट सेंसिंग में उपयोग किया जाता है।

2. कनोपी से जुड़े घटक

- वस्तुओं का उत्सुर्जन
- स्टोमेटा की विशेषताएं : स्टोमाटा का आकार, माप एवं संरचना।
- पत्ती की अन्य विशेषताएं : पत्तियों की संख्या एवं आरिएंटेशन, क्यूटिकल की उपस्थिति तथा पत्ती की सतह एवं तने की चिकनाहट।
- पौधे का जल स्तमर : अनुकूल वृद्धि के लिए आवश्यकता के संदर्भ में पत्ती में जल की मात्रा।
- फसल उपज – उच्चतम प्रकाश संश्ल्रेषण।

2.1. उत्सर्जन

उत्सर्जन शब्द का उपयोग किसी वस्तु की सतह से इन्फ्रारेड एनर्जी उत्सर्जन की क्षमता के माप के लिए किया जाता है। उत्सर्जित ऊर्जा वस्तु के तापमान के अनुपात में होती है। उत्सिर्जन सामग्री के प्रकार पर निर्भर करता है और इसका मान 0 (साइनी मीरर) से 1.0 (ब्लैकक बॉडी) के बीच होता है। अधिकांश ऑर्गेनिक, पेंटिड या ऑक्सीडाइज्ड सतहों का उत्सर्जन मान 0.95 के समीप होता है। अधिकांश इंफ्रारेड थर्मल सेंसर में उत्संर्जन विशेषता समायोज्य होती है ताकि अन्य सामग्री, जैसे चमकीली धातु के माप के दौरान एक्यूरेसी सुनिश्चित रह सके। पौधे के चंदोवा, जो समान्यतः चमकीली नहीं होती, इसकी उत्सर्जन 0.90 से 0.95 होती है।

2.1 स्टोमेटल विशेषताएं

सूखे की प्रतिरोधिता में स्टोमाटा रंद्रों का नियंत्रण महत्वपूर्ण है चूंकि इससे वाष्पोत्सतर्जन के विनियमन में मदद मिलती है।

सूखे के दौरान त्वरित गति से स्टोपमेटा बंद करने पर वाष्पोात्स र्जन दर घटती है जिससे ऊतकों में उच्चम जल धारण क्षमता के संग्रहण में मदद मिलती है, पमिणामत: सूखे से बचा जा सकता है। सूखे की प्रतिरोधी जीनप्ररूपों में स्टोपमेटा को शीघ्रता से बंद करने की प्रवृत्ति होती है। बंद स्टोमाटा वाली पत्तियों का तापमान खुले स्टोपमेटा वाली पत्तियों की तुलना में अधिक होती है। खुले स्टोमाटा वाली पत्तियों में वाष्पोत्सर्जन के माध्यीम से जल क्षति के कारण ठण्डा प्रभाव रहता है। इस प्रकार चंदोवा के तापमान को बनाए रखने में स्टोपमेटा की महत्व पूर्ण भूमिका होती है।

रन्ध्र का प्रवाहकत्व बाष्प के आदान–प्रदान तथा वाष्पोत्सर्जन दर का आकलन करता है। अध्यवयनों में देखा गया है कि रन्ध्र प्रवाहकत्व को उपज आकलन के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। गर्म तापमान के अंतर्गत पत्तियों की अधिक चालकता चंदोवा के ठण्डे तापमान से जुड़ी हुई है। सीआईएमएमवाईटी के अनुसंधान में देखा गया है कि 30 वर्षों से सीआईएमएमवाईटी के गेहूं वंशक्रमों की बढ़ी हुई उपज से पत्ती चालकता से अनुपातिक वृद्धि (पास्कट एवं अन्यर, 2012) प्रतिबिम्बित होती है।

2.3 पत्ती की विशेषताएं

पत्तियों की मोटाई तथा सतह की चिकनाहट वाष्पोत्सर्जन कम करने में सहायक होती है। पत्तियों का मुड़ना दबाव के संकेत हैं। इसे सूखे से बचने का प्रक्रिया भी माना जा सकता है। मेडीटेर्रानियन प्रदेश के कुछ घासों में पत्ती मुड़नने से वाष्पोत्सर्जन 43 से 63% तक घट सकता है। कपास में छोटे एवं मोटी पत्तियां सूखे की प्रतिरोधिता से जुड़ी हुई हैं। पत्तियों पर रोएं से पत्ती का तापमान घटता है जिससे वाष्पोत्सर्जन कम होती है। जौ/बार्ली में हल्की हरी एवं सुनहरी पत्तियों में गहरी हरी पत्तियों की अपेक्षा अधिक प्रकाश प्रतिबिम्बित होती है जिससे पत्तियां ठण्डी रहती हैं। जिन जीनप्ररूपों में अधिक प्रकाश प्रतिबिम्बित होती है उनमें अधिक ठंडक का प्रभाव होता है। पत्ती की ये सभी विशेषताएं चंदोवा के तापमान को प्रभावित करती हैं।

2.4 पौधे में जल की मात्रा

पत्तियों के ऊतकों में जल की मात्रा सूचित करती है कि सूखे तथा ताप के स्ट्रैस के दौरान किस सीमा तक स्ट्रैस पड़ा है। पत्ती की जल क्षमता पौधों की जल ऊर्जा स्थिति का आकलन है। इसे प्राय: सूखे की स्थिति में जलीय स्ट्रैस के सूचक के रूप में उपयोग किया जाता है। वैकल्पिक रूप से पत्ती के ऊतकों की सापेक्षीय जलीय मात्रा को पौधे की जलीय स्थिति के मूल्यांकन के विश्व स्तक प्राचल के रूप में उपयोग किया जाता है। केवल जल की मौजूदगी से चंदोवा ठण्डा नहीं होता है बल्कि पौधों की बेहतर वृद्धि और उत्पादकता के लिए वाष्पोत्सोर्जन शीतलन महत्वोपूर्ण है।

2.5 फसल उपज

फसलीय पौधों के सूखे के प्रति सहिष्णुतता वाले जीनप्ररूप नमी स्ट्रैस के दौरान वाष्पोत्सर्जन जल क्षति को रोकते हुए उच्चे प्रकाश संश्लेषण दर्शाते हैं (स्टोकर, 1961)। अत: प्रजनन कार्यक्रमों में सेग्रीगेटिंग मेटीरियल में सूखे के प्रति सहिष्णुषता वाले जीनप्ररूपों के चयन में प्रकाश संश्लेषण विश्वस्त प्राचल है। जहां इंफ्रारेड गैस एनालाइजर (आईआरजीए) मौजूद है वहां बड़ी संख्या में पौधों का प्रकाश संश्लेषण को परम्परागत पद्धति से मापना कठिन है। तथापि उच्च चंदोवा तापमान में भी बायोमास संग्रहित करने के पौधों की क्षमता का पहचान किया जा सकती है। पौधों की जलीय स्ट्रैस की सहिष्णुपता को उनकी वृद्धि एवं उपज से जोड़ा जा सकता है। तापीय एवं सूखे के स्ट्रैस के अंतर्गत चंदोवा तापमान सकारात्मक रूप से उपज से जुड़ा हुआ है। कार्यिकीय (लोप्सच एवं रेनाल्ड्, 2010) एवं आनुवंशिक (पिंटो एवं अन्यस, 2010) प्रमाणों से सूचित होता है कि इसे जड़/वास्कूंलर कैपीसिटी से जोड़ा जाना है।

2.6 चंदोवा तापमान की व्याख्या

ठंडे चंदोवा वाले जीनप्ररूपों को बेहतर जलयोजन स्तर के सूचक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसे स्ट्रैस नैदानिक लक्षण तथा स्ट्रैस अनुकूलित जीनप्ररूपों के प्रजनन चयन में उपयोग किया जाता है (i) सूखे की स्थितियों के अंतर्गत यह गहरी मृदा से जल निस्सारण क्षमता और/या एग्रोनोमिक जल उपयोग दक्षता से संबंधित है (ii) सिंचाई वाली स्थितियों के अंतर्गत यह प्रकाश संश्लेषण क्षमता, सिंक स्ट्रेंथ और/या आनुवंशिक पृष्ठभूमि, पर्यावरण और विकासात्मेक अवस्था के आधार पर वास्कूंलर कैपासिटी सूचित कर सकता है (iii) तापीय स्ट्रैस की स्थितियों के अंतर्गत यह वास्कूलर कैपासिटी, शीतलन व्यवस्था और ताप अनुकूलन से संबंधित है।

2.7 चंदोवा तापमान को कैसे मापें

फसलीय पौधों के चंदोवा तापमान को मापने वाले अधिकांश उपकरण इंफ्रारेड रेडिएशन के उत्सचर्जन पर आधारित है। इस उद्देश्य के लिए प्राय: हाथों में पकड़े जाने वाले इंफ्रारेड थर्मोमीटर तथा इंफ्रारेड इमेजिंग सिस्टम का उपयोग किया जाता है। थर्मल इमेजिंग से, बदलती पर्यावरणीय स्थितियों के अंतर्गत सठीक मापन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्तम खेत परीक्षणों में बड़ी संख्या में भूखण्डों का इमेज लिया जा सकता है। तथापि यह गैर–विनाशकारी (फसल में हस्तक्षेप किए बिना), त्वारित तथा गैर–श्रमसाध्य् पद्धति है। उच्च दक्षता के लिए इमेजिंग सेंसर कैलीब्रेशन तथा एटमोस्फेपरिक करक्शन की प्राय: आवश्यकता होती है। मृदा में नमी की कमी के प्रति पौधों की प्रतिक्रियाओं के बेहतर अवकलन के लिए चंदोवा तापमान से मृदा तापमान के पृष्ठपभूमि को अलग करना बड़ी चुनौती है जिसका वैज्ञानिकों द्वारा समाधान किया जा रहा है।

इन उन्नत प्रौद्योगिकियों से, परम्परागत पद्धतियों की तुलना में सूखे सहिष्णु ता वाले फसलीय पौधों की पहचान शीघ्रता से होगी। उन जीनप्ररूपों के पहचान में सहायता मिलेगी जिनमें सूखे के दौरान गहरी परतों से जल निस्सारण द्वारा चंदोवा को शीतलता प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार के फसलों को मध्येम से गहरी काली मृदाओं के लिए प्रस्ताव किया जा सकता है जो गहरे क्षेत्र के जल से पादप वृद्धि में सहायता देती है। अन्य् प्रकार के पौधे रंद्रों को बंद कर के जल बचत करता है जिससे चंदोवा गर्म रहता है परन्तु पौधा कार्यिकीय गतिविधियों से वांछित जल परिमाण का रखरखाव कर सकता है। इस प्रकार की व्यौवस्था उन मृदाओं के लिए उपयुक्त हैं जो गहरी न हो और पर्याप्त नमी बनाए रख नहीं पाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा अल्प् अवधि के लिए निर्जलीकरण से बचा जा सकता है और सूखे के पश्चात् वर्षा प्रारम्भ होने पर बेहतर निष्पादन हो सकता है। सिंचाई के लिए आवश्ययक जल की बचत के लिए पौधों में इस प्रकार की व्यावस्थाओं का अन्वेषण किया जा सकता है। थर्मल इमेजिंग से फसलों में सूखा अनुकूलन में सुधार के लिए दोनों ही प्रकार के पौधों कि पहचान की जा सकती है।

मापन से पूर्व विवेचना

- दिन में समय का निर्धारण : मापन कार्य विशेष रूप से प्रात: 11:00 बजे से दोपहर 14:00 बजे तक, मेघाच्छादित दिन और वर्षा के दिन से बचें।
- पर्यावरणीय स्थिति : मापन के लिए आसमान साफ होना चाहिए और हवा तेज न हो या हल्की हो। पौधे के सतह सूखा हो, ओस, सिंचाई या वर्षा के कारण भीगा हुआ न हो।
- पौधे की फानोलॉजिकल अवस्था: अवस्था उद्देश्यि आधारित हो तथा प्रत्येक मापन के बीच लगभग 5–7 दिन का अंतराल होना चाहिए ताकि गुण अभिक्ति का उचित पैतृक (हैरीटेबल) आकलन दे सके।
- सदैव भूखण्ड के उस भाग में मापन करें जहां सूर्य के प्रत्यक्ष किरणें पड़ते हों और ऑपरेटर की छाया/निकट के भूखण्डों की छाया दूर हों।

3. थर्मल कैमरा के मुकाबले इन्फ्रारेड थर्मोमीटर

- आईआर थर्मोमीटर संख्या देती है जब कि थर्मल इमेजिंग कैमरा इमेज तैयार करता है।
- आईआर थर्मोमीटर एक एकल स्थान का तापमान मापता है जब कि थर्मल इमेजिंग कैमरा सम्पूर्ण थर्मल इमेज के प्रत्येतक पिक्सेपल के तापमान मापता है।
- उच्च क्षमता वाले प्रकाशिकी के कारण थर्मल इमेजिंग कैमरा लम्बी दूरी से भी तापमान माप सकता है। इससे विशाल क्षेत्र का परीक्षण जल्द कर लिया जा सकता है।

4. थर्मल इमेजिंग की परिसीमाएं

- थर्मल कैमरा अधिक महंगा होता है और आसपास कोइ वस्तु के होने या पर्यावरण से अत्यअधिक प्रभावित होता है अत: संदर्भ के उपयोग की आवश्यवकता होती है।
- उच्च दक्षता के लिए इमेज सेंसर अंशांकन तथा वायुमंडलीय सुधार प्राय: आवश्यक होता है।

◆ ◆ ◆

जैव प्रौद्योगिकी तकनीक का अजैव प्रतिकूल अवरोधी फसलों के विकास में योगदान

अजय कुमार सिंह, महेश कुमार, जगदीश राणे, नरेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान,मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

विश्व खाद्य संगठन के अनुसार वर्ष 2050 तक अनुमानित 9 खरब जनसंख्या के भरण पोषण हेतु खाद्यान के उत्पादन मे करीब 70% वृद्धि की आवश्यकता होगी। अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, उच्च अथवा अत्यंत निम्न तापमान, लवणता तथा पोशक तत्वों की कमी आदि फसल उत्पादकता को कम करने वाले प्रमुख अजैव कारक हैं। इस लेख में दो जैवप्रौद्योगिकी तकनीकी विधाओं–आणविक प्रजनन और जैवअभियांत्रिकी एवं उनका परंपरागत पादप प्रजनन दृष्टिकोण के साथ समाकलन का अजैव प्रतिकूलता अवरोधी फसलों के विकास मे उपयोग की समीक्षा की गयी है। अजैविक बाधाओं/विषमताओं का निवारण बहू–विषयात्मक कृषि जैव तकनीक की पूर्ण क्षमता का उपयोग करके भविष्य में खाद्य पूर्ति को सुनिश्चित किया जा सकता है। पादप प्रजनन द्वारा अजैविक स्ट्रैस प्रतिरोधक युक्त फसलों के विकास में लाभदायक एलिल को कुलीन आनुवांशिक पृष्ठभूमि में संचय हेतु अजैव परस्थितियों मे अनुकूलित पौधों से प्राप्त किया जा सकता है।

आण्विक प्रजनन, जैव अभियांत्रिकी विधाओं का उपयोग अजैव स्ट्रैस अवरोधी फसलों के विकास में किया जा सकता है। ट्रांस्क्रिप्टोमीक एवं प्रोटेओमिक, चिन्हक मुक्त ट्रांसजेनिक सिसजीनेसिस, उपयुकत जीन पता करने हेतु एलिल माइनिंग एवं टिलिंग का उपयोग अजैव स्ट्रैस अवरोधी फसलों के विकास में काफी लाभदायक है। जैवअभियांत्रिकी प्रक्रिया द्वारा अजैव स्ट्रैस परिस्थिति के लिए ढेरों सहिष्णु जीन की पहचान एवं उपयोग हो चुका है। किन्तु, सूखा सहिष्णु संबन्धित ट्रान्स्जेनिक पौधे प्रयोगशाला मे तो अजैव स्ट्रैस अवरोधी साबित हुए है परंतु खेतों मे सफल नहीं हुए हैं। अतः हमें जटिल अजैव स्ट्रैस अवरोधक क्षमता को फील्ड स्तर पर पौधों मे लाने के लिए आण्विक प्रजनन और जैव अभियांत्रिकी विधाओं का परंपरागत पादप प्रजनन दृष्टिकोण के साथ समाकलन करने की आवश्यकता है। इसके अलावा वैज्ञानिक समुदाय द्वारा स्ट्रैस अवरोधक क्षमता से संबन्धित वांछनीय जीन और लक्षण, संबन्धित प्रमुख पादप प्रक्रियायों की सघन अध्ययन एवं बड़े पैमाने पर तना और जड़ की फिनोटायपिंग करने की आवश्यकता है।

अजैव प्रतिकूलता प्रतिरोधक प्रजातियों के विकास में निम्नलिखित बधाएँ हैं।

1. अजैव प्रतिकूलताओं की संकीर्ण प्रकृति जैसे समय, अवधि, गहनता एवं उनकी आवृति अनिश्चित होती है जिससे उनका मात्रात्मक एवं पुनरावृति कठिन होता है।
2. वांछनीय गुणों के साथ अवांछनीय गुणों की सहलग्नता पायी गयी है।
3. विविध श्रोतों से प्राप्त अनुकूल गुणों में प्रजनात्मक बधाएँ पायी गयी है।

अवांछनीय सहलग्नता की परिश्थिती में जैवप्रौद्योगिकी प्रतिकूलता अवरोधक फसल के विकास हेतु एक व्यावहारिक विकल्प है। उदाहरण स्वरूप जैवसूचना विज्ञान एवं जीनोमिक्स के क्षेत्र में आधुनिक प्रगतियां प्रतिकूलता अवरोधक प्रजातियों के विकास हेतु उपयोगी जीन या एलिल प्रदान करने में अहम भूमिका अदा कर सकती है। उत्कृष्ट आनुवांशिक पृष्ठभूमि में आण्विक प्रजनन प्रक्रिया द्वारा एक ही स्पीसीज़ की दो या अनेक प्रजातियों से बेहतर जीन या एलिल का अंतरण किया जा सकता है। अतः जैवप्रौद्योगिकी प्रक्रिया द्वारा अजैविक स्ट्रैस जैसे सूखा, उच्च तापमान, जलनिम्नता इत्यादि अवरोधक प्रजातियाँ विकसित की जा सकती हैं।

प्रतिकूल जलवायुवीय परिस्थिती हेतुअजैव प्रतिकूल अवरोधी फसलों के विकास में पारंपरिक पादप प्रजनन द्वारा कुछ प्रगति हुआ है लेकिन इसमें काफी अधिक समय व्यतीत होता है। वर्तमान में पारंपरिक पादप प्रजनन प्रक्रिया के विकल्प के रूप मेंआण्विक प्रजनन, RN-i, जिंक फिंगर नुक्लियज, CRISPR-CAS जैसे तकनीकों द्वारा लक्षणात्मक जीनों का प्रतिष्ठापन द्वारा अजैव स्ट्रैस अवरोधी फसलों को खेतों में निम्न जल उपयोग के साथ उगाने का प्रयास किया जा रहा है। अजैविक स्ट्रैस की परिस्थिती में फसल मे उत्पादकता सुधार हेतु जैवप्रौद्योगिकी का गहन विश्लेषण वैज्ञानिक विधि द्वारा किया गया है। इसमें पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में बदलाव, प्रकाश संश्लेषण उत्पाद के वितरण में बदलाव, समग्र बायोमास एवं नत्रजन उपयोग क्षमता में बदलाव पर विशेष बल दिया गया है। पौधों में अजैवीक स्ट्रैस की प्रतिक्रियात्मक घटनाओं का आण्विक एवं जीनोमिक्स स्तर की जानकारी हमें

आण्विक प्रजनन, आनुवांशिक अभियांत्रिकी एवं अतिवांछित एकीकृत जैवप्रौद्योगिकी तकनीक का उपयोग फसलों में बहू–प्रतिकूलता प्रतिरोधकता विकास के लिए सक्षम बनाती है।

हाल के वर्षों में जीनोमिक्स के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। प्रमुख खाद्य फसलें जैसे चावल, मक्का, बाजरा एवं सोयबिन की जीन श्रिंखलायेँ निर्धारित की जा चुकी हैं जो शोध द्वारा अजैविक स्ट्रैस की परिस्थिती में फसल उत्पादकता मे सुधार हेतु लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। जीनोम एवं ट्रांसक्रिपटोम अनुक्रम विभिन्न आनुवांशिक विधियों के साथ मिलकर प्रतिकूलता प्रतिरोधक आनुवांशिक कारकों की पहचान में सार्थक सीध हो सकते हैं, धान मे जलमग्नता अवरोधी जिन की पहचान इसी माध्यम से की गयी है जो Sub-I नाम की जलमग्नता अवरोधीकिस्म के रूप में प्रसिद्ध है। ज्वार की फसल में सूखा अवरोधकता पर्याप्त मात्र में उपलब्ध होती है जो एक विशेष प्रकार के miRNA (169G) एवं कुछ अन्य जीन की अभिव्यक्ति (expression) द्वारा परिलक्षित होती है। धान में सूखे की स्थिति में इस जीन का अभिव्यक्ति ज्यादा होता है। सूखा तथा जलमग्नता अवरोधीता के लिए उपयुकत जिन/मात्रात्मक लक्षण लोसाइ (क्यूटीएल) की पहचान फसलों में आण्विक प्रजनन द्वारा किया जा सकता है। क्यूटीएल खंड से सहलग्न चिंहकों की पहचान के बाद कैंडिडैट जिन या क्यूटीएल को कुलीन आनुवांशिक पृष्ठभूमि में चीन्हक सहायक प्रतीक संस्कारण (Marker Assisted Backcrossing) विधी द्वारा अंतर्निहित किया जा सकता है। सूखा और उच तापमान अवरोधकता संबन्धित लक्षण कम वर्षायुक्त एवं गरम परिवेश में फसल के किस्मों में अनुकूलन को ध्यान में रख कर शोध करने की आवश्यकता है।

ट्रांसजेनिक धान में अरबिडोप्सिस के CBF/DREBs अथवा ABF3 ट्रांसकृपसन फेक्टर की उच अभिव्यक्ति वृद्धि को प्रभावित किए बिना सूखा सहिष्णुता बढ़ाने में उपयोगी साबित हुई है। RNAi द्वारा FTA या FTB (*Farnesyl transferase*) जीन का साइलेंसिंग करके स्टोमेटा की संचालकता एवं बाष्पोत्सर्जन को कम करके फसल के उपज को सूखे की परिस्थिती में बढ़ाया जा सकता है। पौध विकास एवं वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में बहू–दबाव अवरोधकता अनुवंशकिय अभियांत्रिकीय पौधों द्वारा उपयुकता प्रमोटर के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

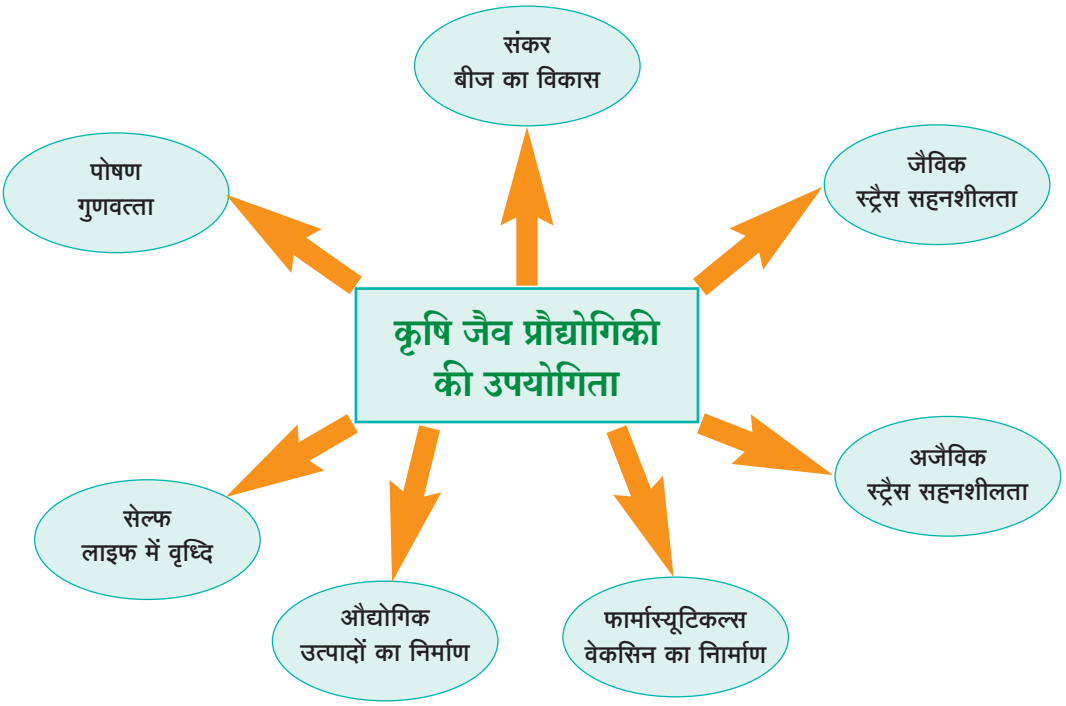

कृषि जैव प्रोद्योगिकी का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगिता

◆ ◆ ◆

स्वच्छ जल की समस्या, शहरी अपशिष्ट जल का कृषि में नियोजित व सुरक्षित उपयोग

परितोष कुमार, नीरज कुमार, सी बी हरीशा, नरेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगांव, बारामती, पुणे – 413 115, महाराष्ट्र

परिचय

आज पूरे विश्व में जल संकट एवं स्वच्छ जल प्रबंधन एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। विश्व की आबादी 80 मिलीयन प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है जिससे पिछले 50 वर्षों में स्वच्छ जल की खपत तिगुनी हो गयी है। देश की प्रगति, बढ़ती जनसंख्या, खाद्य विकास, तेजी से हो रहे शहरीकरण व औद्योगीकरण, ग्रामीण विकास, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन, प्राकृतिक संसाधनों के न्यायसंगत आवंटन सहित प्रमुख विकास संबंधी चुनौतियों से लड़ने में जल का खास महत्व है। भारत के साथ–साथ आज पूरा विश्व स्वच्छ जल के घटते स्तर की समस्या से जूझ रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में जल के प्रयोग का सर्वाधिक 70 से 80 प्रतिशत खपत कृषि में होता है, जबकि घरेलू व औद्योगिक क्षेत्र में जल कि खपत केवल 5 व 15 प्रतिशत ही है। भारत में अनुमानित 60 प्रतिशत खेती वर्षाजल पर आश्रित है। स्वच्छ जल के अभाव में भारत समेत अधिकांश विकासशील देशों में किसान कम गुणवत्ता वाले गंदे पानी जैसे कि नमकीन एवं क्षारीय सतही व भूमिगत जल, शहरी अपशिष्ट जल, कृषि वखान से निस्काषित जल, उद्योगों का प्रदूषित जल, तूफानी बारिश से एकत्र हुआ पानी (स्टॉर्म वॉटर) आदि का प्रयोग करने को विवश हैं। खाद्य और कृषि संगठन (एफ.ए.ओ, 2010) के अनुमानित आंकड़े के अनुसार विश्व में 5,25,000 हेक्टेयर खेत व 800 मिलीयन शहरी किसानों में से 200 मिलीयन किसान अपशिष्ट जल का प्रयोग खेती के लिए कर रहे हैं। भारत में 73,000 हेक्टेयर से ज्यादा भूमि मुख्यतः हैदराबाद, वड़ोदरा, दिल्ली, कानपुर, कोलकाता, नागपुर, वाराणसी आदि शहरों में आस–पास के किसान अपशिष्ट जल का प्रयोग विभिन्न फसलों जैसे कि धान, गेहूं, सब्जी, कपास, मवेशी चारा, मछ्ली इत्यादि के उत्पादन में कर रहे हैं। कृषि में अप्रशोधित अपशिष्ट जल के प्रयोग में चीन के

अपशिष्ट जल का भारत के विभिन्न शहरों में खेती में प्रयोग (अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (आई.डब्ल्यू.एम.आई., 2007)

शहर	प्रत्यक्ष प्रयोग (हेक्टेयर)	अप्रत्यक्ष प्रयोग (हेक्टेयर)	सब्जी	धान	अन्य फसल	चारा	फल	कपास	मछ्ली
वडोदरा	–	14567			Y			Y	
हैदराबाद	110	40500	Y	Y		Y	Y	Y	Y
कोलकाता	–	12900	Y	Y					Y
हुब्ली–धारवाड़	5750	–	Y			Y	Y		
कानपुर	2500	–	Y	Y	Y				
नागपुर	1500	–	Y	Y	Y	Y			
अमृतसर	1214	–			Y				
दिल्ली	1214	–	Y		Y				
अहमदाबाद	890	–		Y	Y	Y			
भिलाई	607	–	Y	Y	Y				
ग्वालियर	202	–	Y	Y	Y				
जमशेदपुर	113	–			Y	Y			
लखनऊ	150	–	Y	Y					
चेन्नई	133	–				Y			
मदुरई	77	–				Y			
बीकानेर	40	–	Y		Y				
त्रिवेन्द्रम	37	–				Y			

बाद भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा देश बन चुका है (एफ.ए.ओ, 2010)। विगत समय में विश्व की सम्पूर्ण आबादी का दसवां हिस्सा अप्रशोधित या अपर्याप्त प्रशोधित अपशिष्ट जल के प्रयोग से उगे खाद्य पदार्थों का सेवन कर रहा है जिनमें विकासशील देश जैसे कि अफ्रीका, एशिया, और लैटिन अमेरिका शामिल हैं।

अपशिष्ट जल का कृषि में प्रयोग एवं उनके लाभ

हमारे देश में अनुमानित 60 प्रतिशत खेती वर्षाजल पर आश्रित है। विगत वर्षों में वर्षा की अनिश्चितता व स्वछ पानी के अभाव के कारण शहर के किनारे रहने वाले कई वर्षाजल पर आश्रित किसान कृषि में सिंचाई के लिए शहरी अपशिष्ट जल का प्रगोग करने लगे हैं। इनसे उन्हे समय पर, उचित मात्रा में, हर समय कम खर्च में अपशिष्ट जल उपलब्ध हो जाता है। साथ ही साथ इसके उपयोग से उन्हें खेतों में कम उर्वरक इस्तेमाल करने पड़ते हैं और उनका खेती में लागत भी काम लगता है। इनमें मौजूद पोसक तत्वों की बहुलता होने से इसके इस्तेमाल करने पर फसल भी काफी अच्छी होती है और उन्हें बेचकर वो ज्यादा मुनाफा कमाते हैं। खेती में अपशिष्ट जल के इस्तेमाल से निम्न लाभ होते हैं:

- पोषक तत्वों का मिट्टी में पुनर्चक्रण
- भूमिगत जल का पुनर्भरण
- कम लागत में जल की आपूर्ति
- उर्वरक के खर्च में बचत
- स्वछ जल के प्रदूषण पर नियंत्रण

अपशिष्ट जल के संघटक एवं उनके कृषि उपयोग के परिणाम

कम गुणवत्ता वाले गंदे पानी जैसे कि शहरी अपशिष्ट जल में 99 प्रतिशत मात्रा जल होता है जिसमें विभिन्न पादप पोसक तत्वजैसे कि नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेइसिउम, सोडियम, क्लोरिन, कैल्सियम, मैग्नीशियम,कार्बनिक पदार्थ घुले होते हैं जो पौधों के विकास में सहायक होते हैं और उर्वरक के खपत व खर्च को कम करते हैं और साथ ही साथ मिट्टी में कार्बन की मात्रा एवं सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ाते हैं। जबकि इन पोषक तत्वों की अतिरिक्त मात्रा से पौधे कमजोर व बीमारी के लिए अति संवेदनशील हो जाते हैं। अपशिष्ट जल में मौजूद तैरने वाले कण मिट्टी में मौजूद रंध्रों को बंद कर देते हैं जिससे जल के मिट्टी के अंदर जाने में अवरोध उत्पन्न करता है और पौधे की जड़ों तक पानी समुचित मात्रा में नहीं पहुँच पाता है। अपशिष्ट जल में मौजूद घुलनशील आयन के अधिकता से लंबे समय तक प्रयोग से मिट्टी धीरे- धीरे लवणीय व क्षारीय हो जाती है और अन्ततः भूमि बंजर हो सकती है। अपशिष्ट जल में पादप पोसक तत्वों के साथ-साथ कई प्रकार के भारी धातु जैसे कि क्रोमियम, सीसा, कैडमियम, आर्सेनिक, निकेल एवं कुछ सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कि आयरन, मंगनीज, कॉपर, ज़िंक, आदि भी अतिरिक्त मात्रा में घुले होते हैं जो फसल की गुणवत्ता को कम कर देते हैं व खाद्य श्रृंखला में संदूषण का कारण भी होते हैं। अपशिष्ट जल में घुले कई प्रकार केकृषि-रसायन, औषधीय-रसायन, औद्योगिक-रसायन पौधों के लिए विषैले होते हैं और फसल के उत्पादन पर प्रभाव डालते हैं। अपशिष्ट जल में कई प्रकार के बीमारी उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, प्रोटोज़ोआ, वाइरस, हेल्मिन्थ आदि भी काफी मात्रा में होते हैं। बिना किसी सावधानी के प्रयोग से त्वचा व पेट संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। अपशिष्ट जल के अत्यधिक प्रयोग से उसमें मौजूद नाइट्रोजन व फास्फोरस आस-पास के जलशयों में पहुँच सकता है जिससे जलाशयों में शैवाल जमने लगता है और उनमें रहने वाले मछ्ली व अन्य जीव-जन्तु के विकाष में बाधा डालता है। अपशिष्ट जल के अत्यधिक प्रयोग से उनमें मौजूद नाइट्रेट, विषैले रसायन व भारी धातु वर्षा जल के साथ रिसते-रिसते भूमिगत जल को भी प्रदूषित कर सकता है। इनमें पाये जाने वाले रसायनों के वाष्पीकरण वायु-प्रदूषण व नाईटरस ऑक्साइड एवं हाइड्रोजन सल्फाइड़ ग्लोबल वॉर्मिंग में भी सहायक होते हैं। इस जल से उपजे फसल, सब्जी, पशु-चारे के खाने से मनुष्य व मवेशी बीमार भी पड़ सकते हैं। अतः अपशिष्ट जल का उचित प्रशोधन किए बिना लंबे समाय तक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता, किसान व खेत में काम करने वाले मजदूरों के स्वस्थ्य,फसल की गुणवत्ता, आस-पास के जलाशयों, भूमिगत जल एवं पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इनके प्रभाव की सीमा अपशिष्ट जल

के संरचना, उपयोग की मात्रा, प्रशोधन की सीमा,सिंचाई की आवृत्ति, सिंचाई के प्रकार,सिंचाई की अवधि, मिट्टी के प्रकार, जलवायु की स्थिति, उपयोग के तरीके (नियोजित या अनियोजित प्रयोग, अप्रशोधीत प्रत्यक्ष या साफ जल में मिला कर प्रयोग) आदि पर निर्भर करता है।

अपशिष्ट जल का प्रशोधन एवं उनका महत्व

प्रशोधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अपशिष्ट जल से हानिकारक तत्वों और अतिरिक्त पोसक तत्वों को निस्काषित किया जाता है। इससे प्रशोधित जल को पुनः उपयोग में लाया जा सकता है। प्रशोधित जल के कृषि में उपयोग से पर्यावरण, काम करने वाले किसान व खेतिहर मजदूरों तथा उगाये जाने वाले फसल के खाने से स्वास्थ्य संबंधी खतरा/नुकसान काफी हद तक कम हो जाता है। अपशिष्ट जल का प्रशोधन मुख्यतः चार चरण में किया जाता है (i) प्रारंभिक प्रशोधन, (ii) प्राथमिक प्रशोधन, (iii) द्वितीयक प्रशोधन एवं(iv)तृतीय प्रशोधन। प्रारंभिक प्रशोधन में अपशिष्ट जल से बड़े–बड़े अघुलनशील तत्वों जैसे की प्लास्टिक, पत्थर, कागज, खाद्य पदार्थों के टुकड़े, मृत जीवों के अवशेष आदि को निस्काषित किया जाता है। जबकि प्राथमिक प्रशोधन में जाली व पृष्ठसक्रियकारक तत्वों का प्रयोग कर अपशिष्ट जल का भौतिक निस्यंदन किया जाता है जिसमें अपशिष्ट जल में तैरने वाले या डूबे हुए अघुलनशील छोटे–छोटे कणों को निस्काषित किया जाता है। द्वितीयक प्रशोधन में स्टेब्लिजेसन और ओकसिडेसन पौंड, अपफ्लो एनारोबिक स्लज ब्लंकेट रिएक्टर (यू.ए.एस.बी.), ट्रिकलिंग फिल्टर, एक्टिवेटेड स्ल्ज प्रक्रिया (ए.एस.पी.), एयरेटेड लैगून आदि प्रयोग में लाये जाते हैं तथा अपशिष्ट जल में घुलनशील व तैरने वाले कार्बनिक तत्वों को सुक्ष्म्जीवों द्वारा विघटन किया जाता है। तृतीय प्रशोधन में अपशिष्ट जल में मौजूद अतिरिक्त पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, घुलनशील आयनों,भारी धातु व हानिकारक सूक्ष्मजीवों को निस्काषितकिया जाता है। तृतीय प्रशोधन में विभिन्न तरीके जैसे कि आयन एक्सचेंज, इलेक्ट्रोडियालिसिस (ई.डी.) या इलेक्ट्रोडियालिसिस रिवर्सल (ई.डी.आर.), माइक्रोफिल्टरेशन (एम.एफ.), अल्ट्राफिल्टरेशन (यू.एफ.), नैनोफिल्टरेशन (एन.एफ.), रिवर्स ऑस्मोसिस (आर.ओ.);अतिरिक्त नाइट्रोजन को हटाने के लिए वायु निष्कासन (एयर स्ट्रीपिंग), जैविक नाइट्रिकेशन और डीनाइट्रिकेशन; अतिरिक्त फास्फोरसको हटाने के लिए झिल्ली निस्यंदन, रासायनिक अवक्षेपण औरजैविक स्वांगीकरण; हानिकारक सूक्ष्मजीवों को ओज़ोन या पराबैंगनी उपचार द्वारा विसंक्रमीकरण किया जाता है। प्रशोधन की सीमा जैसे–जैसे बढ़ती है उसकी प्रशोधन में खर्च व ऊर्जा की जरूरत भी बढ़ती जाती है। द्वितीयक प्रशोधन तक अपशिष्ट जल से घुलनशील व तैरने वाले कार्बनिक तत्वों (बी.ओ.डी. और टी.एस.एस.) का 85 से 95 प्रतिशत तक निस्काषित हो जाते हैं जबकि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और भारी धातुओं का मामूली हिस्सा ही निस्काषित हो पाता है।

अपशिष्ट जल प्रशोधन तंत्र की विफलता एवं उनके कारण

पूरे विश्व में करीब 3300 तरह के जल प्रशोधन के तंत्र व तकनीक कम कर रही है मगर ज़्यादातर तकनीक विकसित देशों में हैं। विकासशील व कम आय वाले देशों में प्रयोग हो रही अधिकतर अपशिष्ट जल प्रशोधन तंत्र या तो खराब रहती हैं या कम अपशिष्ट जल का शोधन कर पाती हैं। खराब अपशिष्ट जल प्रशोधन तंत्र की संख्या एशिया मे सर्वाधिक 35 प्रतिशत है जबकि केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, 2007 के आंकड़ों के अनुसार भारत में अनुमानित 40–70 प्रतिशत जल प्रशोधन तंत्र सही से कम नहीं कर रहे। इसका मुख्य कारण उनका अनुचित प्रारुप, खराब रख–रखाव, वैकल्पिक बिजली आपूर्ति की कमी, गैर तकनीकी और अकुशल दृष्टिकोण है। प्रशोधन तंत्र से निकालने वाले कीचड़ के निष्कासन, प्रशोधन व प्रबंधन पर आज भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। नई तकनीक वाले तंत्र उच्च–पूंजी और रख–रखाव में ज्यादा लागत के कारण विकासशील एवं कम आय वाले देशों के पहुंच से बाहर हैं। इसलिए ज़्यादातर विकासशील एवं कम आय वाले देशों में अपशिष्ट जल का प्रशोधन प्राथमिक से द्वितीयक स्तर तक हो पाता है जबकि विकसित देशों में तृतीय स्तर तक होता है। संयुक्त राष्ट्र विश्व जल आकलन कार्यक्रम (यू.एन.–डब्ल्यू.डब्ल्यू.ए.पी., 2003) के अनुमानित आंकड़े के अनुसार विश्व में प्रति दिन 1500 ट्रिल्यन लीटर अपशिष्ट जल का उत्पादन होता है जबकि संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यू.एन.ए.एस.सी.ओ., 2012) के आंकड़ों के अनुसार उसका केवल 20 प्रतिशत विकासशील व 8 प्रतिशत कम आय वाले देशों में प्रशोधन हो पाता है । केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सी.पी.सी.बी., 2016) के अनुमानित आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रतिदिन 61,754 मिलीयन लीटर शहरी अपशिष्ट जल का उत्पादन होता है, जिसका केवल 38 प्रतिशत (22,963 मिलीयन लीटर) का प्रशोधन हो पाता है और बाकी 38,791 मिलीयन

लीटर अपशिष्ट जल बिना किसी प्रशोधन के आस पास के नदियों, झीलों या तालाबों में बहा दिया जाता है जो उसमें मौजूद स्वछ जल को भी प्रदूषित करते हैं।

अपशिष्ट जल का कृषि में सुरक्षित प्रयोग

विगत वर्षों में विश्व शोध में काफी बदलाव आये हैं। परंपरागत अपशिष्ट जल उपचार प्रणाली कि पुनर्रचना पर देश–विदेश में काफी शोध चल रहे हैं ताकि उनका कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में पुनः उपयोग किया जा सके। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने इस संदर्भ में बहुदेशीय दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी है जो किपरंपरागत व अपरंपरागत अपशिष्ट जल उपचार प्रणाली दोनों पर लागू होते है। इसके साथ ही साथ स्वास्थ्य सुरक्षात्मक उपायों पर भी ध्यान देने की बात कही है ताकि स्वास्थ्य संबंधी लक्ष्य (प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष खाद्य पदार्थों से होने वाले खतरों को 6 लॉग यूनिट तक कम या सूक्ष्मजीव की आबादी व10–6) को प्राप्त किया जा सके। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के अलावा खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.), विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (आई. डब्ल्यू.एम.आई.) आदि ने अपशिष्ट जल के खेती में सुरक्षित प्रयोग के लिए कई रिपोर्ट व दिशानिर्देश जारी किए हैं।

(i) **कम खर्च वाले तकनीक द्वारा अपशिष्ट जल का विकेंद्रीकृत प्रशोधन-** आजकल कम लागत वाले विकेंद्रीकृत प्रशोधन के तरीकों पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है। यूनाइडेट स्टेट्स पर्यावरणीय संरक्षण एजेंसी, (यू.एस.–ई.पी.ए., 2012) के अनुसार इनके संचालन के पैमाने में लचीलापन, उपचार विकल्पों की विस्तृत श्रृंखला, प्रभावी लागत, टिकाऊ प्रकृति, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा करने की क्षमता, ग्रामीण, शहर के किनारे वाले ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। कम लागत वाले विकेंद्रीकृत प्रशोधन के तरीकों में मनुष्य द्वारा निर्मित आर्द्र भूमि (कंस्ट्रक्टेड वेटलैंड), खेतों पर तालाब, तलछट जाल, जैव–रेत फ़िल्टर आदि का निर्माण शामिल हैं। विकेंद्रीकृत प्रशोधन के इन सारे तरीकों में जल, मिट्टी, पत्थर, पौधों, सूक्ष्मजीव की एकीकृत प्रणाली एक साथ मिलकर प्रकृतिक ऊर्जा श्रोतों जैसे की सूर्य, वायु, जल आदि का उपयोग कर अपशिष्ट जल का प्रशोधन करते हैं। इनका निर्माण कम लागत में और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से आसानी से हो सकता है। इनका प्रबंधन कोई भी गैर तकनीकी व्यक्ति आसानी से कम खर्च में कर सकता है। विकेंद्रीकृत प्रशोधन के तरीकों में बड़े पैमाने पर बने सीवेज उपचार संयंत्र और केंद्रीय यांत्रिक जैविक अपशिष्ट जल उपचार प्रणालीकी तुलना में 72 और 83 प्रतिशत कम ऊर्जा खपत होती है।

(ii) **प्रयोग की विधि-** टपक सिंचन प्रणाली या फव्वारा सिंचन प्रणाली सिंचाई तकनीक के प्रयोग से अपशिष्ट जल द्वारा मिट्टी एवं पर्यावरण में संदूषण कम होता है।

(iii) **प्रयोग नियंत्रण-** अपशिष्ट जल में अतिरिक्त पोसक तत्वों के नकारात्मक प्रभाव से बचने के लिए उनको साफ पानी के साथ मिला कर या उचित मात्र में ही सिंचाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अपशिष्ट जल के लवणता (ई.सी.) 2 डेसी साइमन प्रति मीटर और कुल घुलनशील तत्वों (टी.डी.एस.) 2000 मिलीग्राम प्रति लीटर से ज्यादा होने पर उसे सिंचाई में प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपशिष्ट जल में क्लोराइड कि मात्रा 100 मिलीग्राम प्रति लीटर से ज्यादा होने पर फव्वारा सिंचन प्रणाली सिंचाई तकनीक व 350 मिलीग्राम प्रति लीटर से ज्यादा होने पर प्रत्यक्ष(फ़्लड) सिंचाई का प्रयोग नहीं करना चाहिए। मिट्टी की पी.एच. 6.5 से कम होने पर भारी धातुओं की अधिक मात्रा वाले अपशिष्ट जल का प्रयोग बिना प्रशोधित किए नहीं करनी चाहिए।

(iv) **फसल नियंत्रण-** यदि आपके पास द्वितीयक से तृतीय प्रशोधित अपशिष्ट जल या प्रशोधन की व्यवस्था हो तब बिना किसी फसल नियंत्रण के कोई भी फसल, सब्जी, फल, मवेशियों के चारा उगाने व मछ्ली पालने में प्रशोधित जल का प्रयोग कर सकते हैं। यदि आपके पास प्राथमिक से द्वितीयक प्रशोधित अपशिष्ट जल या प्रशोधन की व्यवस्था हो तब टपक सिंचन प्रणाली या फव्वारा सिंचन प्रणाली सिंचाई तकनीक के प्रयोग के साथ–साथ थोड़ी फसल नियंत्रण रखना चाहिए। इस प्रशोधित जल का प्रयोग सब्जी उगाने में नहीं कर सकते हैं। यदि आपके पास प्रारंभिक से प्राथमिक प्रशोधित अपशिष्ट जल या प्रशोधन की व्यवस्था हो तब फसल नियंत्रण रखना अति आवश्यक है।इस जल का प्रयोग हम खाद्य को छोड़कर दूसरे फसलों जैसे कि

फूल, कपास, जूट, लकड़ी वाले पौधे उगाने एवं लॉन प्रबंधन में कर सकते हैं। इस जल का प्रयोग किसी खाद्य फसल को उगाने के लिए नहीं करनी चाहिए।

(v) **सुरक्षात्मक उपाय-** अपशिष्ट जल के प्रयोग के साथ खेत में कम करते समय सुरक्षात्मक कपड़े जैसे कि जूते व दस्ताने पहनने चाहिए। खेत में काम करने के बाद हाथ–पैर साबुन से साफ करने चाहिए। फसल काटने के दो सप्ताह पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। फसल कटाई और उसे खाने के बीच अंतराल रखनी चाहिए ताकि बीमारी उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीव मर जाएँ या उनकी गतिविधि कम हो जाए। अपशिष्ट जल के प्रयोग से उगी हुई सब्जी व फल को खाने से पहले धो लेनी चाहिए, उनका ऊपरी छिलका उतार लेनी चाहिए और अच्छी तरह पका कर ही खाना चाहिए। अपशिष्ट जल के प्रयोग के साथ खेत में काम करने वाले किसानों व मजदूरों को टाइफाइड व हेपटाइटिस–ए का टीका लगवाना चाहिए।

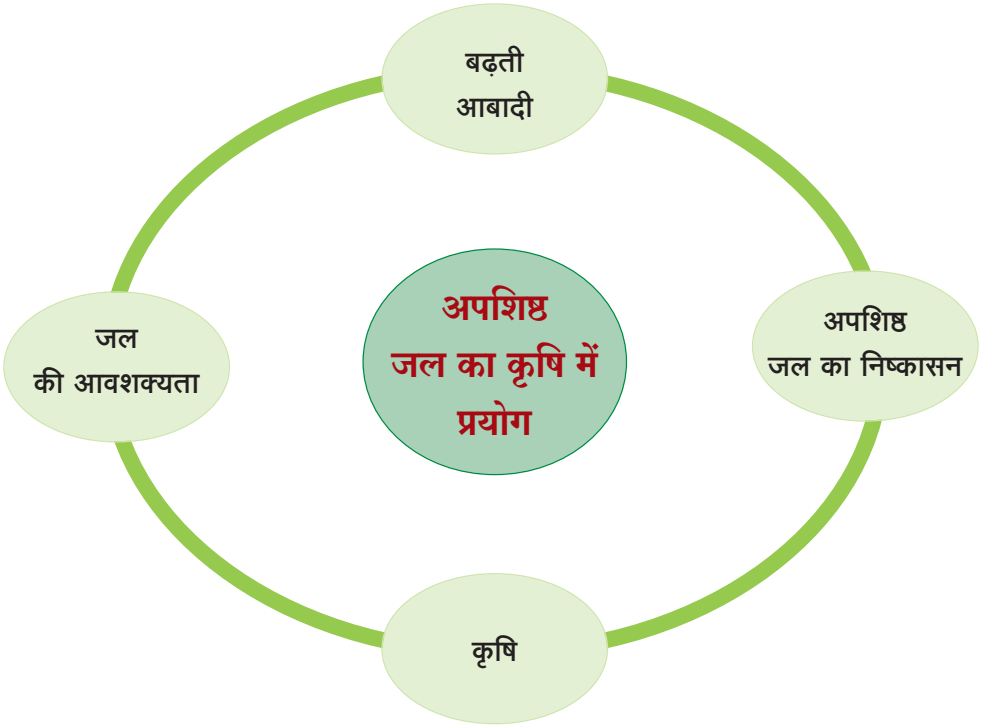

निष्कर्ष

घटते जल स्तर के साथ–साथ बढ़ते शहरी अपशिष्ट जल का प्रबंधन भी एक प्रमुख समस्या बनकर आज पूरे विश्व में व्याप्त है। कृषि में इसके नियोजित प्रयोग से जल समस्या का निदान व अपशिष्ट जल का कुशल प्रबंधन एक साथ हो सकता है। इज़राइल अपने देश का 80 प्रतिशत अपशिष्ट जल, स्पेन (17 प्रतिशत), यूनिटेड स्टेट ऑफ अमेरिका (5 प्रतिशत) प्रशोधित कर कृषि व अन्य क्षेत्रों में पुनः उपयोग कर रहे हैं। अतः हमें भी इस ओर ध्यान देने की जरूरत है। भारत में अपशिष्ट जल के कृषि में सिंचाई के लिए उपयोग के बारे में जल रोकथाम और प्रदूषण पर नियंत्रण अधिनियम (वॉटर एक्ट, 1974) में भी वर्णित है। अपशिष्ट जल भी एक संसाधन है जिसका कृषि व अन्य क्षेत्र में उपयोग हो सकता है। अपशिष्ट जल का कृषि में सुरक्षित प्रयोग के लिए तीन बातों का ध्यान रखना अति–आवश्यक है (i) सिंचाई में उपयोग से पहले उनका उचित प्रशोधन/उपचार (ii) अपशिष्ट जल का नियोजित प्रयोग (iii) प्रशोधित जल के गुणवत्ता एवं प्रयोग किए जाने वाले मिट्टी की नियमित निगरानी (iv) प्रशोधित जल के प्रयोग के समय उचित सावधानी और उनसे प्रयोग के तरीके व परिणाम की उचित जागरूकता। इसके लिए सरकार, वैज्ञानिकों, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठन और किसानों द्वारा समर्थित व समेकित प्रयास की आवश्यकता है।

◆ ◆ ◆

बंजर चट्टानी बसाल्टिक क्षेत्र का उपजाऊ भूमि में परिवर्तन

योगेश्वर सिंह, धनंजय नांगरे, पी एस कुमार, महेश कुमार, पी बी तावरे, आर के पसाला, एन पी सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, बारामती–413115 पुणे, महाराष्ट्र।

भारतीय कृषि खाद्य सुरक्षा तथा सीमित भूमि एवं जल संसाधनों तथा आसन्न जलवायु परिवर्तनों के बीच सततता के लिए विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रही है। अत: खाद्य सुरक्षा के लिए सामाजिक आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त भूमि–जल–पर्यावरण संबंधी विज्ञान से समाधान उपलब्ध करना एक प्रशंसनीय विकल्प है। संस्थान का क्षेत्र बसाल्टिक पठारी भूमि है जिसकी ऊंचाई 565 से 547 मीटर दक्षिणी ढलान की ओर है। वर्षों से रेडियल ड्रेनेज के कारण लेंडस्केप के उत्तर–पश्चिमी तथा उत्तर–पूर्वी दिशा में खड्ड जैसा बन गया है और सतही अपरदन से सतह पथरीली आवरण बन गई है। नुकीली ढलान वाली भाग से जुड़ी जमीन की प्राकृतिक विशेषताएं खड्ड हैं जबकि अन्य भाग में सामने की ओर अपक्षय भाग में छुटपुट झाड़ियां या फसलों में अवरोध वाले सॉफ्ट शीट (40% सतही आवरण पर)है। सम्मिट और बैक स्लोप 1–3% ढलान से तथा स्लाइड स्लोप और सोल्डर स्लोप 5–10%ढलान से जुड़े हैं। नियमित तौर पर सूखापन और उथली एवं बजरी वाली रिजोस्पेयर से पौधों पर नमी का स्ट्रैस पड़ता है।

मृदा का गठन बसाल्टिक आग्नेय शैलों के अपक्षय से होता है। कम वर्षपात, बार–बार का सूखापन, अनुपयुक्त जलनिकासी वाली मृदा तथा कृषि के लिए अनुचित प्रौद्योगिकी, भौमजल की कमी के अतिरिक्त उच्च तापमान आदि वे प्रमुख कारण हैं जिनसे इस क्षेत्र में मृदा गठन का विकास निम्न स्तर का है। इस स्थान पर उथले 0.1–0.3 मीटर मुर्रम मृदा का आवरण है जो पेरेंटल बसाल्टिक रॉक से ढका हुआ है जिसमें निम्न गति की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक अपक्षय प्रक्रिया होती है। आईसीएआर–एनआईएएसएम ने तीन वर्षों की अल्पावधि में कृषि अनुपयोगी चट्टानी बसाल्टिक भू–भाग को उपजाऊ भूमि में परिवर्तित करने हेतु व्यवहारिक प्रौद्योगिकी का विकास किया। निवेश क्षमता, जोखिम उठाने की क्षमता, सिंचाई के लिए उपलब्ध जल के आधार पर हमारे पास चट्टानी बंजर भूमि को फसलों तथा फल के बागानों हेतु कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने योग्य सशक्त तकनीक मौजूद है।

1.1 मुर्रम तथा बसाल्टिक रॉक का विघटन

यह स्थान बंजर बसाल्टिक चट्टानी भू–भाग था जहां मृदा की गहराई अधिकतम 0.3 मीटर तथा विशेषकर दक्षिणी फार्म में मुर्रम तथा उत्तरी दिशा में कठोर चट्टान से ढका हुआ था। मृदा विघटन तथा मृदा विकास की गति में तेजी लाने हेतु भौतिक (मेकानिकल) सिद्धांत के साथ रासायनिक अपक्षय प्रक्रियाओं को क्रमबद्ध रूप से अपनाया गया। इनका विवरण निम्नवत है :

चरण1: भारी मशीनों से रिप्पिंग एवं चेनिंग: मेकानिकल प्रक्रिया के अंतर्गत पेरेंटल रॉक ब्लॉक्स को छोटे आकार के बोल्डर/ग्रेवेल्स/ग्रेनुलर रूप में परिवर्तित करने हेतु ब्लास्टिंग या रिप्पिंग को लक्ष्य बनाया गया। भारी मशीनों (डोजर 200 एचपी) के उपयोग से रिप्पिंग प्रक्रिया अपनाने से पूर्व संपूर्ण उत्तरी (36 हे.) तथा दक्षिणी (18 हे.) दिशा की भूमि को ढलानों के आधार पर सीढ़ीदार भूखंडों तथा उप–भूखंडों में विभाजित किया गया। डंपी लेवल के उपयोग से टोटल स्टेशन ग्रिड सर्वे (15 मीटर ×15 मीटर) के द्वारा प्रत्येक सीढ़ीनूमा/उप–भूखंडों को समतल बनाने हेतु ऊंचाई का अंतर मापा गया। सीढ़ीनूमा/उप–भूखंडों की ऊपरी सतह में भरने के उद्देश्य से सीढ़ीनूमा/ भूखंडों को समतल बनाने से पूर्व फ्रंट डोजर द्वारा ऊपर की 0.1–0.3 मीटर मुर्रम मृदा को खोदकर अलग किया गया। तत्पश्चात रिप्पर वाले डोजर (मॉडल नं. D355)के उपयोग से इस क्षेत्र का रिप्पिंग किया गया ताकि रिप्पर के दांतों (0.9 मी.) से अपक्षयी तथा गैर–अपक्षयी शैलों/मुर्रम फ्रैगमेंट्स को तोड़कर गहराई तक दबाया जा सके। बेहतर ग्रेड के प्राइमरी एवं सेकण्डरी जियोलाइट सामग्री को उन्हीं डोजरों से चेनिंग के माध्यम से आगे उभारा गया। रिपिंग, चेनिंग तथा पुशिंग प्रक्रियाओं को 2–3 बार दोहराया गया ताकि सतह समान रूप से समतल बन सके। तथापि प्रत्येक रिपिंग प्रक्रिया के पश्चात, बड़े पत्थरों को डोजरों की सहायता से चेनिंग द्वारा चूर–चूर किया गया, चेनिंग के बाद भी बचे हुए बड़े पत्थरों को भौतिक रूप से हटा कर सड़क बनाने में उपयोग करने हेतु ले जाया गया।

सर्फेस स्क्रैपिंग

चट्टानी सतह का रिपिंग/चेनिंग

सड़क भरने हेतु भारी पत्थरों को हटाकर उन्हें एकत्रित करना

दूसरी बार रिपिंग एवं चेनिंग प्रक्रिया

समतल, रिपिंग एवं चेनिंग किया हुआ खेत

प्रक्षेत्र विकास के लिए रिपिंग, चेनिंग, बड़े बोल्डरों को हटाना तथा समतलीकरण

चरण 2 सूक्ष्म-विस्फोट : भारी डोजरों से रिपिंग व चेनिंग के पश्चात बचे कठोर चट्टानों को सूक्ष्म–विस्फोट द्वारा तोड़ा गया। इसके लिए चट्टान को जिन जगहों से तोड़ना है उन स्थानों पर एक पंक्ति में सेमी–ऑटोमेटेड ट्राक्टर चालित ड्रिल मशीन से 0.5 से 1.0 मी. की दूरी पर 0.6 से 0.9 मी. गहरे गड्ढे बनाए गए। तत्पश्चात डेटोनेटिंग कॉर्ड्स, लचीली ट्यूब जिसमें उच्च गति का एक केंद्रीय कोर होता है, इलेक्ट्रिक कैप–सेंसीटिव नाइट्रेट एक्सप्लोजिव जिसे विस्फोटक सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है उसे इन गड्ढों में भरा गया है। उपयुक्त इलेक्ट्रिकल एवं ब्लास्टिंग सरक्यूट से इन कॉर्डों को विस्फोट वाले क्षेत्र से दूर सुरक्षित स्थान पर एक ही बिजली के स्रोत से जोड़ा गया है। इलेक्ट्रिक कैप को फायर करने के लिए जेनरेटर ब्लास्टिंग मशीन जैसे एक्सप्लोडर जिसमें छोटे हस्तचालित इलेक्ट्रिक जेनरेटर होता है, उसका उपयोग किया गया। विस्फोट से निकली ऊर्जा से चट्टान टुकड़ों में बदल जाता

है और भू–कंपन तथा वायु विस्फोट भी होता है। विस्फोट से निकले चट्टान के टुकड़ों को एकत्रित कर सड़क भरने में उपयोग किया गया। उत्पन्न शेष सामग्री का पुन: चेनिंग, रिपिंग तथा समतल बनाने हेतु पुशिंग किया गया।

सूक्ष्म–विस्फोट

सूक्ष्म–विस्फोट के पश्चात पत्थर के टुकड़े

विस्फोट तथा बोल्डर हटाना

1.2. खेतों का समतलीकरण

अच्छी कृषि, मृदा तथा फसल प्रबंधन कार्यविधियों में भूमि का समतलीकरण एक अग्रणी कार्य है। प्रभावी भूमि समतलीकरण जल–उपयोग तथा फसल स्थापन में सुधार करता है। इस संदर्भ में प्रक्षेत्र के भूखण्डों की ऊपरी असमतल मुर्रम सतह को ट्रैक्टर चालित फ्रंट डोजर (75 एचपी) की सहायता से अच्छी तरह समतल बनाया गया। तत्पश्चात उपभूखण्डों की औसत ऊंचाई मापा गया ताकि इस ऊंचाई पर केन्द्रक से गुजरने वाले प्लेन से काटने और भरने का समान परिमाण उत्पन्न हो सके। प्रत्येक भूखण्ड को समतल बनाने के लिए सिंचाई की दिशा में मृदा के अनुसार 0.1–0.4% ढलान की सुरक्षित सीमा तय की गई। केन्द्रक के प्रस्तावित औसत ऊंचाई से संबंधित ग्रिड पायन्ट की ऊंचाई घटा कर प्रत्येक भूखण्ड का कट और फिल की गणना की गई। कट एरिया में फ्रंट डोजर वाले अर्थ मूविंग ट्रेक्टर से काफी संघनन (कम्पैक्शन) किया गया, अत: खोदी गई मिट्टी का परिमाण, संकुचन यानि कट–फिल अनुपात के संदर्भ में व्यक्त परिकलित परिमाण से भी कम पाया गया। समतल बनाने की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात प्रक्षेत्र भूखण्डों की समानता पानी भर कर जांच की गई। निचले क्षेत्र को पुन: भरकर समतल बनाया गया।

समतलीकरण कार्य से पूर्व पत्थरों को हटाना

समतल बनाया गया मुर्रम भूखण्ड

जोताई और दुरूस्त समतलीकरण

1.3 स्पेंट वाश का अनुप्रयोग

गन्ना इस क्षेत्र की प्रमुख फसल है तथा गन्ना उद्योग के उपोत्पाद के रूप में डिस्टिलरी स्पेंट वाश बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। चूंकि कच्चा स्पेंट वाश अम्लीय होता है तथा इसका पीएच 4.0 होता है इसलिए इसका उपयोग मूल रूप से चट्टानी सामग्रियों/मुर्रम के साथ अभिक्रिया के लिए किया गया तथा इस प्रकार रासायनिक विघटन से मृदा विकास की प्रक्रिया में वृद्धि की जा रही है। इसके अतिरिक्त जैविक पदार्थ का उच्च स्रोत (OC 43.8 ग्रा./ली.) होने के कारण स्थूल एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों में वृद्धि के साथ

ही यह सूक्ष्म जीवों के पनपने में सहायता करता है तथा जैविक अम्लों जैसे इनके उपोत्पादों का जियोलाइट तथा अन्य सामग्रियों के साथ अभिक्रिया को प्रेरित करने तथा इसके परिणामस्वरूप विघटन में सहायता करता है। सभी सीढ़ीनूमा फार्मों/खेतों में फर्रो या क्यारियों में मालेगांव सहकारी गन्ना फैक्टरी के लगभग 24 मिलियन लीटर स्पेंट वाश का टैंकरों के बहि:स्त्राव पाइपों द्वारा 6–12 माह के अंतराल में दो बार अनुप्रयोग किया गया। स्पेंटवाश से उपचार के बाद चट्टानी बसाल्टिक/जियोलायटिक बोल्डर्स/पत्थर इतने कमजोर हो गए हैं कि ये आगे रेत के टुकड़ों तथा कंकड़ में बदल गए हैं जब खेत की जोताई की गई है। तत्पश्चात इन खेतों को फ्रंट डोजर वाले ट्रक्टरों के उपयोग से अच्छी तरह समतल बनाया गया। जहां आवश्यकता हुई वहां इन भूखण्डों में उजागर हुए चट्टानी टुकड़ों पर डोजर के उपयोग से रिपिंग किया गया। स्पेंट वाश जियोलाइट्स तथा मुर्रम के अपक्षय में प्रभावी पाया गया और समग्र रूप से मृदा की उर्वरता में वृद्धि हुई। प्रत्येक जोताई के दौरान पाए गए सख्त बोल्डर जिनका अपक्षय स्पेंट वाश से भी नहीं हुआ है उन्हें हाथों से हटा दिया गया है और ढाई वर्ष में खेत जड़ पकड़ने हेतु पर्याप्त अध:स्तर (मृदा) के साथ खेती के लिए तैयार हो गए हैं।

स्पेंट वाश का अनुप्रयोग

स्पेंट वाश का दूसरा अनुप्रयोग

तीसरी जुताई तथा श्रंखलन के बाद खेत

स्पेंट वाश का अनुप्रयोग तथा इसकी अभिक्रिया के परिणाम

1.4 जैविक कार्बन समृद्धि के लिए हरित खाद

दक्षिण दिशा की खेत भूखण्डों में रिपिंग/ब्लास्टिंग, चेनिंग, स्पेंट वाश का अनुप्रयोग, बोल्डर हटाना और समतलीकरण आदि कार्य पूरा करने के पश्चात प्रत्येक भूखण्ड की समरूपता जांच धैंचा उगाकर की गई और हरित खाद के लिए उपयोग किया गया और इस प्रकार जैविक पदार्थ, पौषणिक तत्वों की वृद्धि की गई। धैंचा फसल की समग्र वृद्धि कम हुई, 8–10 सप्ताह में केवल 7–11 चस/हर ताजा भार (सूखे भार के आधार पर नाइट्रोजन 2.06, फास्फोरस 0.18, पोटाशियम 2.09%) दर्ज हुई। वास्तव में नवीन मृदा की निम्न उर्वरता इसका मुख्य कारण है परन्तु इस अवधि में अपर्याप्त कैनल जल आपूर्ति भी धैंचा विकास को परिसीमित किया है।

स्थानीय मृदा में प्रथम धैंचा फसल

तीसरी जुताई तथा श्रंखलन के बाद खेत

धैंचा फसल तथा अन्य फसलों को उगाकर समरूपता परीक्षण

सतही मृदा के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि यह अब भी कंकरीला (70–80% विभिन्न आमाप के कंकड़ तथा शेष 20–30% 2 एमएम से छोटे) है और इसकी उर्वरता (जैविक कार्बन 0.04% तथा उपलब्ध नाइट्रोजन एवं फास्फोरस क्रमश: 0.04% तथा 1.4 कि.ग्रा./हे.) भी कम है। यह निर्णय लिया गया था कि 20–25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद डाला जाए। डेयरी बिखरे हुए होने तथा किसानों द्वारा गन्ना फसल में गोबर के उपयोग के कारण संस्थान द्वारा बार बार टेंडर करने पर भी केवल 340 घनमीटर गोबर (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम 0.45, 0.19 तथा 0.42%; बल्क डेनसिटी 0.72 एमजी/घनमीटर) ही प्राप्त हो सका। इससे दक्षिणी प्रक्षेत्र का कुछ भाग में ही गोबर डाला जा सका। अत: जैविक पदार्थ का विकल्प की खोज की गई। एक मुशरूम फार्म की पहचान की गई जिनके पास स्पेंट मुशरूम सबस्ट्रेट प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। इसके जैविक कार्बन और पौषणिक स्तर (कार्बन:नाइट्रोजन 30:1, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम 2.35, 0.32, 0.17%) तथा कम कीमत पर आपूर्ति पर विचार करते हुए इसे खरीदने का निर्णय लिया गया। अत: शेष भूखण्डों में 990 घनमीटर स्पेंट मुशरूम सबस्ट्रेट डाला गया। तत्पश्चात स्पेंट मुशरूम सबस्ट्रेट/गोबर की खाद डाले गए भूखण्डों पर पुन: धैंचा उगाया गया और इस बार फसन का निष्पादन बेहतर (27–33 टन /हे.) रहा और हरित खाद के लिए खेत की पुन: जोताई की गई।

स्पेंट मुशरूम सबस्ट्रेट का अनुप्रयोग

1.5 कृषि फसलों की खेती

जिन भूभागों का ढलान 1–1.5 प्रतिशत था उनका प्रयोग कृषि फसलों को उगाने हेतु किया जा सकता है। इस बात को चरितार्थ करने हेतु एक बहुवर्षीय प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में तेरह उपचार निरक्षण किया गए, जिसके तहत सिंचित स्थिति में गन्ना, नैपियर, सोयबीन–गेहूं, सुबबूल, लूसर्ण, मक्का–ज्वार एवं वर्षा–आधारित स्थिति में सुबबूल, अंजन घास एवं खरीफ चारा ज्वार उगाया गया। तीन उपचारों: गन्ना, सोयबीन–गेहूं और कंट्रोल प्लॉट में हर साल स्पेंट वॉश 5 लाख लिटर जमीन में डाला गया।

इस प्रयोग के पाँच वर्षों के सम्पूर्ण होने पर यह जानकारी प्राप्त की गयी की इस तरह की ज़मीनों में यदि गन्ना उगाया जाए और हर साल स्पेंट वॉश 5 लाख लीटर जमीन में डाला जाए तो किसान भाई इस तरह की ज़मीनों से लाभ कमाने के साथ साथ इसे कुछ ही वर्षों में अच्छी उपजाऊ जमीन में परिवर्तित कर सकते हैं। जिन जगहों पर स्पेंट वॉश की उप्लभ्द्ता नहीं है उन जगहों पर हरी खाद को प्रयोग में लाना आवश्यक है।

26.5 मिलियन हेक्टेयर, चट्टानी बंजर, उथले और अकृष्य भूमि

चट्टानी, बंजर, उथले और असुरक्षित भूमि की खेती तकनीक का परीक्षण

1.6 बागानों की स्थापना

रोपण स्थान के नीचे 1.0 मी. चट्टान में विस्फोट से तैयार किए गए सब–सर्फेस वाटर स्टोरेज का परीक्षण किया गया ताकि सूखे के प्रति संवेदनशीलता को कम किया जा सके तथा अनुपूरक सिंचाई आवश्यकता (चित्र 7) को न्यूनतम बनाया जा सके।

ऑगरबोर गड्ढों की खोदाई

सूक्ष्म–विस्फोट की तैयारी

सूक्ष्म–विस्फोट के लिए कैटरिज लगाना

विस्फोट की प्रक्रिया

विस्फोट के पश्चात ऑगरपिट की गहराई

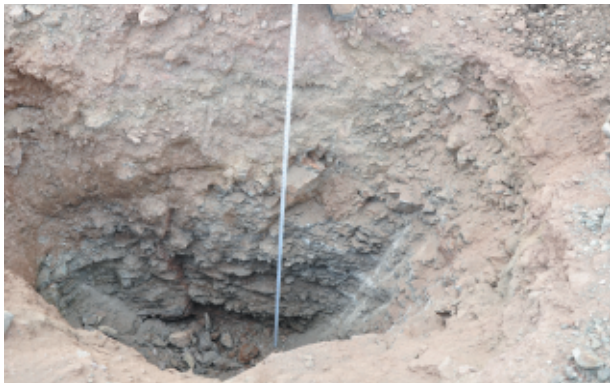

विस्फोट के पश्चात सामान्य खड्डे की गहराई

विस्फोट के पश्चात मिनी–ट्रेंच की गहराई

रोपण स्थान के नीचे विस्फोट के पश्चात एक ट्रेंच

बागानों की संवहनीयता के लिए एक विशिष्ट सब–सोयल वाटर कंजर्वेशन तकनीक का परीक्षण

इसी प्रकार भिन्न जड़ प्रणाली वाले उपरोक्त फलों के जड़ फैलाव के लिए विभिन्न परिमाण के रिजो–स्पीयर (ऑगर, पिट तथा ट्रेंच) को विचलित किया गया।

इन प्रयोगों में यह पाया गया की यदि अनार की बगानों की स्थापना 2×2×1 मिटर किउबिक गड्ढों में की जाए एवेम इसमें 2 शुक्ष्म ब्लास्ट कर दिया जाए तो इनमें सूखे की स्थिति से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है एवेम सामान्य वर्षों में इसमें उपज भी 13–17% ज्यादा प्राप्त होती है।

अतः किसान भाइयों से अनुरोध है की वह लोग इस तकनीक का प्रयोग कर बंजर चट्टानी बसाल्टिक क्षेत्र को उपजाऊ भूमि में परिवर्तन कर अपनी व्यय क्षमता अनुसार कृषि या बागवानी हेतु उपयोग में लाकर लाभ अर्जित करें।

◆ ◆ ◆

भारत में बागवानी का यांत्रिकीकरण: चुनौतियाँ एवं उपाय

[1]भास्कर गायकवाड, [2]गोरक्ष वाकचौरे, [3]अजित मगर
[1,2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मलेगाँव, बारामती, 413115, पुणे, महाराष्ट्र
[3]वैज्ञानिक आईसीएआर–केन्द्रीय अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल

भारत की लगभग दो तिहाई कार्यशील जनसंख्या खेती में संलग्न है। पिछले पाँच वर्षों (2010–11से 2014–15) मैं कृषकों का रुझान खाद्यानों से बागवानी फसलों की ओर अधिक हुआ है। उपयुक्त अवधि में बागवानी फसलों के क्षेत्रफल में लगभग 7.26 प्रतिशत (1.585 मिलियन हेक्टेयर) की वृद्धि हुई, जबकि खाद्यानों के क्षेत्रफल में 3.36 प्रतिशत (4.6 मिलियन हेक्टेयर) की कमी देखी गई। बुआई क्षेत्रफल में हुए इस महत्वपूर्ण विस्तार के फलस्वरुप वर्ष 2012–13 के पश्चात बागवानी फसलोत्पादन खाद्यान्नों से आगे निकल गया एवं पिछले दशक में इसमें लगभग 7.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। छः वर्गों अर्थात फलों, सब्जियों, फूलों, औषधीय/सुगन्धित पौधों मसालों तथा बागवानी फसलों में से वर्ष 2013–14 में फलोत्पादन में 9.5 प्रतिशत की उच्चतम वार्षिक वृद्धि देखी गई। भारतीय कृषि नीति में मांग के अनुरूप उत्पादन का विकास होने के फलस्वरूप अन्य कृषि उत्पादों विशेषकर बागवानी को महत्व दिया गया है। पिछले दशक में हुआ विकास इस बात का सूचक है कि बागवानी उत्पादों की मांग में बढ़ोतरी हुई है। फलों को उत्पादन में वृद्धि होने से पुरस्कार स्वरूप उनके द्वारा किए गए निवेशका बेहतर प्रतिफल प्राप्त हुआ। वैश्विक बाजार में फलों और सब्जियों के दूसरे सबसे बड़े उत्पादक होने के बावजूद निर्यात प्रतिस्पर्धा में भारतीय बागवानी के लिए कुछ अड़चने कृषि

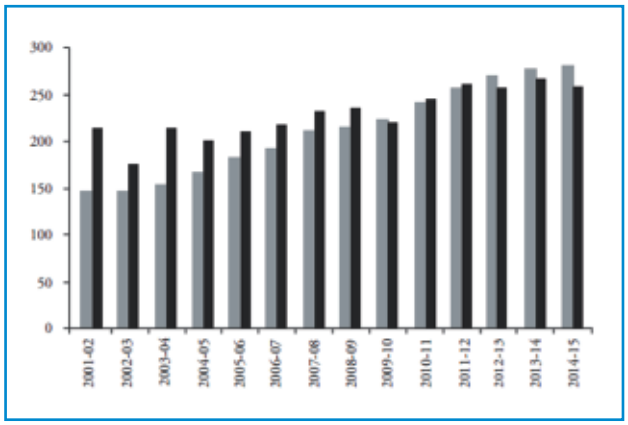

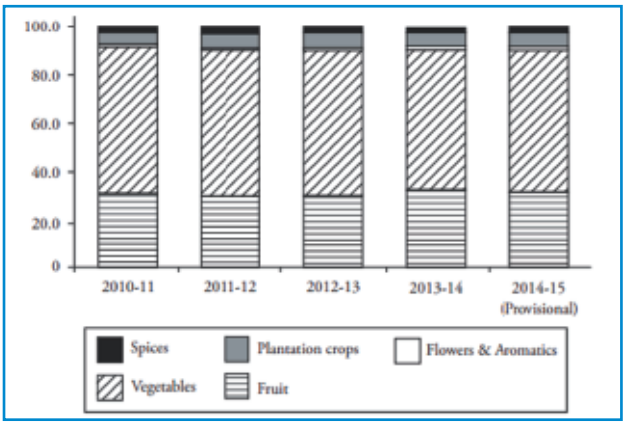

श्रमिकों की बढ़ती हुई परिश्रमिक दरें तथा श्रमिकों की उपलब्धता में कमी होना है।यदापि बागवानी फसलों की खेती विशाल क्षेत्र में की जा रही है तथा इसमें निरन्तर वृद्धि भी हो रही है, किंतु अभी भी खेती/बागवानी की अधिकांश प्रक्रियाएं हस्तचलित मनुष्यों द्वारा ही की जाती है। इस क्षेत्र में यांन्त्रिकीकरण की प्रवृत्ति/गति अत्यंत धीमी है जिसका मुख्य कारण यांन्त्रिकीकरण के उपयुक्त विकल्प की अनुपलब्धता है। यहां तक कि राज्य शासन द्वारा मशीनरी बैंक का समाधान उपलब्ध करवाने के बाद भी कृषि मशीनों की उपलब्धता तथा इन तक कृषकों की संपूर्ण वास्तविक भौतिक पहुंच में काफी अंतर है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद देशों में अपने अनुसंधान संस्थानों के नेटवर्क के माध्यम से आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण बागवानी फसलों के लिए चयनित यांन्त्रिकीकरण के विकल्प उपलब्ध करवाने के प्रयास कर रहा है। तथापि कृषि अभियांत्रिकी अनुसंधान केंद्रों द्वारा नवीन उपकरणों की डिजाइन, फेब्रिकेशन तथा परीक्षण/व्यावहारिक प्रचालन तथा औद्योगिक सम्पर्क के माध्यम से बाजार में उनके उपलब्धता के बीच समय का अंतराल काफी अधिक होता है।अधिकांश बागवानी फसल उत्पादक छोटी जोत वाले भूस्वामी किसान है तथा कृषि मशीनरी के लिए निवेश करने की क्षमता सीमित है। तथापि अन्य असंगठित फसल उत्पादकों की तुलना में फल एवं सब्जी विक्रेता बेहतर रूप से संगठित है तथा राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर बागवानी उत्पादक समितियों से जुड़े हुए हैं। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सहकारिता मशीनरी बैंकों एवं भाड़े पर मशीनरी प्राप्त करना छोटे किसानों के लिए सबसे व्यवहारिक विकल्प है। मशीनों के स्वामी या इन मशीनों का शुल्क वसूल कर इन्हें अन्य किसानों के खेतों में प्रचलित कर सकते हैं, या इन्हें दूसरे व्यक्तियों को भाड़े पर दे सकते हैं। अनेक भाड़ा केंद्र स्थापित किए गए हैं जिन्होंने इस दिशा में पहल की है। अधिकांश किसानों के पास स्थानीय स्तर पर निर्मित कृषि मशीनरी तथा चीन जैसे देशों से आसानी से आयोजित मशीनें है जिन्हें मंगवाकर उन्हें सीधे खेतों में प्रचलित किया जा रहा है। भाड़े पर देने के लिए उपयुक्त विशिष्ट व्यापार मॉडल्स की कमी के कारण भविष्य में आर्थित व्यवहार्यता को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त प्रयास बागवानी के यांन्त्रिकीकरण के समाधान के रूप में अधिक प्रचलित होंगे। भारत में सामान्यतया उपलब्ध एवं कार्यान्वित

किए जाने वाले यांन्त्रिकीकरण संबंधी समाधान में विभिन्न कृषि प्रश्नों में मानव श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग करना सम्मिलित है। इससे बचो में उच्च शक्ति तथा कम मानवीय कौशल की आवश्यकता होगी। तथापि बागवानी के क्षेत्र में खेत तैयार करने के पश्चात प्रसंस्करण उपरांत की अधिकांश गतिविधियों में उच्च मानवीय कौशल एवं तुलनात्मक रूप से शक्ति की आवश्यकता होती है। मानवीय कुशलतावाली गतिविधियों में मानवीय श्रम की कमी का सामना करने के लिए संवेदकों से युक्त जटिल मशीनों की आवश्यकता है ताकि इन प्रचलनो में वांछित परिणाम प्राप्त हो सके। भारत में कृषि अनुसंधान संस्थानों द्वारा पूर्व में बागवानी की ऐसी प्रक्रिया की पहचान कर के प्रयास किए गए हैं जिन्हें यांत्रिकृत किया जा सकता है। इनसे ज्ञात हुआ है कि चयनित कटाई छटाई ग्राफ्टिंग,प्ररोपन, छंटाई व फलों की तुड़ाई विशेषकर आसमान भौतिक परिवर्तनों वाली फसलों में इस प्रकार के प्रचालानों को पूर्णतया किया जाना तकनीकी तौर पर जटिल तथा खर्चीला साबित होगा। पाश्चात्य जगत में कुछ कृत्रिम बुद्धिमत्ता वाली मशीनों विकसित की गई है जिनका बागों में सफल कार्यान्वयन करने हेतु उनमें अनेक दशकों तक कुछ चुनिंदा फसल क़िस्मों के मुख्य विकास चक्रों के अनुरूप आवश्यक बदलाव किए गए।

भारतीय परिदृश्य इसके काफी भिन्न एवं विवद्धतापूर्ण है तथा इस अंतर के कारण यांत्रीकृत समाधानों को सीधे तौर पर अपनाया जाना वर्तमान में संभव नहीं है। अतः भारतीय परिस्थितियों में अपनाए जाने योग्य आयातित समाधानों एवं उनकी उपयुक्तता संबंधी गहन अध्ययन किया जाना चाहिए। इन समाधानों का स्वदेशीकरण उपयुक्त बाजार सर्वेक्षण के पश्चात प्रारंभ किया जा सकता है, ताकि भारतीय निर्माताओं को व्यापार में स्थायित्व प्राप्त हो एवं निजी सार्वजनिक भागीदारी के तहत शासकीय संस्थानों व निजी उद्योगों द्वारा समयबद्ध शोध एवं विकास किए जा सकें।इस कदम में आयातित समाधानों के अपनाए जाने संबंधी आर्थिक पूर्वानुमान करना एवं तकनीकी पक्ष के लिए (मरम्मत एवं रखरखाव, कल पुर्जों की उपलब्धता, प्रशिक्षण प्रचालक) पर्याप्त संरचना की उपलब्धता करवाना है। इस प्रक्रिया को स्थायित्व प्रदान करने के लिए चंद्रशेखर निर्मित स्थायित्व परीक्षण किया जाना उचित होगा ताकि इसकी सामाजिक प्रासंगिकता तकनीकी आर्थिक व्यवहार की मूल्यांकन किया जा सके। स्थायी विकास के बिना इस व्यापार की दीर्घावधि तक सुव्यवस्थित रह पाना कठिन होगा। नीति निर्माताओं को नीतियों का निर्माण करते समय उपर्युक्त परीक्षणों पर अवश्यही ध्यान देना होगा ताकि इस व्यापार को अधिक उत्पादक, दक्षतापूर्ण बनाया जा सके एवं कठोर श्रम को भी कम किया जा सके। अत: वर्तमान में इस बात की आवश्यकता है कि संतुलित सीमा तक मशीनों के साथ मानवीय श्रम को सम्मिलित किया जाना चाहिए ताकि लागत को कम करने, उत्पादकता एवं दक्षता को बढ़ाने तथा समय की बचत करने में सहायता मिले ताकि वर्ष में एक से अधिक फसल ली जा सके। सरल शब्दों में चयनीत यांत्रिकीकरण द्वारा कम भूमि से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती सकती है ताकि खेती को अधिक किफायती एवं लाभप्रद बनाया जा सके।केंद्र तथा राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों तथा उन व्यक्तियों की निवेश क्षमता में वृद्धि कर रही है जो यंत्रीकरण सेवा सेवाएं प्रदान करने की इच्छुक है। इनके लिए विभिन्न योजनाओं के तहत घटी हुई ब्याज दरों पर तथा कम मूल्य (सब्सिडी पर) कृषि उपकरण खरीदक्रय हेतु उपलब्ध करवाए जाते है।भारत शासन का कृषि यांत्रिकीकरण संबंधित उप–मशीन है जिसके अंतर्गत कृषि यांत्रिकीकरण, बढ़ती हुई कृषि शक्ति की उपलब्धता, भाड़ा केंन्द्रों, उच्च प्रौद्योगिकी एवं उच्च मूल्यवाले कृषि उपकरण तथा उनके कार्यनिष्पादन परीक्षण एवं प्रमाणीकरण पर ध्यान केंन्द्रिय किया गया है। मध्य प्रदेश यंत्रदूत योजना के तहत कृषि कार्यों के लिए मॉडल का कार्य कर सकता है। इस प्रकार की पहल का उद्देश्य कृषि यांत्रिकिकरण की दर में गति लाना है जिससे बागवानी का यांत्रिकीकरण भी हो सके। कृषि मशीनों की बढ़ती हुई मांग के फलस्वरुप कृषि मशीनरी उद्योग में भी वृद्धि हुई। संगठित क्षेत्र में कृषि मशीनरी का वार्षिक उत्पादन 50,000 करोड़ रु. को पार कर चुका है। असंगठित कृषि मशीनरी निर्माण क्षेत्र (लघु तथा ग्राम स्तरीय कृषि उपकरण निर्मातागण) भी अच्छा व्यापार कर रहें हैं। यह उद्योग अनुमानित 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की स्वस्थ दर से वृद्धि कर रहा है।तथापि भारतीय कृषि उपकरण बाजार में चीनी उपस्थिति से भविष्य में भारतीय निर्माताओंकी विकास दर प्रभावित हो सकती है।अत: भारतीय किसानों एवं निर्माताओं के हितों की समुचित सुरक्षा के उपाय भी किए जाने चाहिए।बागवानी क्षेत्र को यांत्रिक किए जाने के लिए सम्भावनाएं प्रचुर है किंतु इसमें यंत्रीकरण कमियों को दूर करने मिश्रित रणनीति की आवश्यकता है। इसमें बागवानी फसलों के अंतर्गत बढ़ते हुई कृषि में प्रतिस्पर्धा, भारतीय एवं विदेशी बाजारों में भारतीय बागवानी उत्पादों की आपूर्ति एवं इस क्षेत्र की बढ़ती हुई श्रमिकों की मांग की पूर्ति की जा सकेगी।

इस संबंध में निम्नलिखित कार्य योजना प्रस्तावित है।

1. संपूर्ण विश्व में उपलब्ध पहचान करने योग्य उपयुक्त मशीनरी एवं उपकरण जो भाड़े पर देने के लिए अथवा एकल स्वामित्व हेतु आवश्यक संशोधन के उपरांत अथवा सीधे अपनाए जाने योग्य है।

2. भारतीय श्रम विज्ञान प्रक्रियाओं व स्थितियों के लिए अनुकूलता परीक्षण तथा अनुसंधान एवं प्रदर्शन के उद्देश्य कृषि उपकरणों के शीघ्र आयात करने के लिए नीतिगत ढांचे का विकास करना।

3. फसल संबंधी प्रक्रियाओं के यांत्रिकीकरण तथा उन्हें अंतिम रूप देने के लिए उपयुक्त फसल की पहचान करना बागवानी फसलों हेतु यांन्त्रिकीकरण के लिए कृषि प्रणालियों का विकास करना।

4. विभिन्न कृषि अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान एवं कृषि विश्वविद्यालय द्वारा एकल स्वामित्व के लिए उपयुक्त मशिने तथा उपकरण विकसित किए जा रहे हैं। इसे बढ़ावा देने के लिए छोटे तथा सीमांत किसानों को सीधे छूट (सब्सिडी) प्रदान किए जाने हेतु शासन से वित्तीय सहयोग की आवश्यकता होगी।

5. भाड़ा केन्द्र संचालित करने अथवा एकल तौर पर व्यक्तियों द्वारा भाड़े पर यंत्र देने की सेवाएं प्रदान करने हेतु व्यवसाय व्यापार संरचनाओं (मॉडल्स) का विकास करना ताकि विकास में समानता व स्थायित्व लाया जा सके। इन मॉडल्स में फसल कैलेंडर के आधार पर उपयोग का आंकलन सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही कुछ कृषि प्रक्रियाएं करने तथा भंडारण व परिवहन हेतु उपलब्ध प्रभावी दिनों को इस में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इन केंद्रों को सूचना प्रौद्योगिकी समाधानों के माध्यम से नेटवर्क में जोड़ा जा सकता है ताकि कार्यभार का समान वितरण, आसानी से मरम्मत व रखरखाव की विफलता की संभावनाओं में कमी तथा समझ अंतिम उपयोगकर्ताओं को उपकरणों व सेवाओं की सरल उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

6. निर्माण किए गए कार्यक्रम दीर्घकाल में स्थायी है या नहीं यह देखने के लिए 7 चरणों वाला स्थायित्व परीक्षण किए जाने हेतु मॉडल्स विकसित करना।

7. गुणवत्ता परीक्षण: बाजार में उपलब्ध अधिकांश छोटी एवं मध्यम आकार मशीनों की निर्माण गुणवत्ता घटिया होती है तथा इनमें पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्थाओं का भी अभाव रहता है। ये अधिकांश मध्यम तथा छोटे निर्माताओं द्वारा निर्मित होती है जिनमें विनिर्दिष्ट मानकों का अनुपालन नहीं किया जाता है। इस मुद्दे का समाधान किया जाना आवश्यक है तथा रखरखाव की लागत को कम किया जा सके एवं प्रचालकों की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जा सके इस उपाय का सीधा संबंध प्रचालकों के स्वास्थ्य तथा अप्रत्यक्ष रूप से उस राशि से है जो देश के चिकित्सालय बीलों तथा उचित दुर्घटना दावों के निपटारे निपटाने मेंव्यय की जाती है।

8. बागवानी में कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग को कम करने हेतु सुनियोजित/ सटीक मशीनरी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए ढांचागत नीति तैयार करना। इसका प्रत्यक्ष संबंध निर्यात को नीतियों व मानदंडों तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रदूषित वमृदा, जल,वायु तथा सभी प्रकार की मनुष्यों व पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार लाना है; जो कि उचित उपायों के अभाव में निरंतर प्रदूषित होते जा रहे हैं। अगली हरित क्रांति कार्यालय हेतु सिंचाई के साथ-साथ निकासी के उपाय भी आवश्यक है।

9. कृषि यांत्रिकीकरण क्षेत्र में उद्यमिता, नवप्रवर्तन एवं स्टार्टअप के बारे में अधिक उत्साह दिखाई नहीं देता है। प्रगतिशील किसानों को डिजिटल तौर पर जोड़ने के लिए काफी संभावनाएं है। डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया तथा राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत बागवानी में अन्य स्मार्ट प्रौद्योगिकी विकास करने की संभावनाएं है।

◆ ◆ ◆

उथली और चट्टानी मिट्टी में बागों का विकास करने के अभिनव तरीके

डी डी नांगरे, योगेश्वर सिंह, सुरेश कुमार, पी एस मिन्हास, जगदीश राणे और एन पी सिंह
भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, बारामती 413115

परिचय

भारतीय बागवानी ने पिछले चार दशकों के असाधारण वृद्धि दर्ज की है।फल उत्पादन (लगभग 269 मिलियन टन) अब कुल खाद्य उत्पादन (लगभग 260 मेट्रिक टन) से आगे निकल गया है। महाराष्ट्र 56 मेट्रिक टन (15%) के योगदान के साथ सबसे बड़ा फल उत्पादकराज्य है। उसके बाद आंध्र प्रदेश (12%) का स्थान है। फिर भीप्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में गिरावट, निरंतर सूखा और पानी की कमी, जलवायु परिवर्तन आदि कई कारकों के कारण, बढ़ती आबादी के लिए बढ़ती फल की मांग को पूरा करने की चुनौती अब भी हमारे देश के सामने है। खाद्य और बागवानी का विकास मुख्य रूप से निरंतर प्रयासों के कारण होता है। अतीत में घटित प्राकृतिक अपदाऔको जलवायु परिवर्तन के कारण, कृषि मे गंभीर नुकसान हुआ है। मिट्टी मे पोषक तत्वों का अभाव, साथ ही बढ़ती अम्लता, क्षारीयता और प्रदूषण आदि सबसे हानिकारक रासायनिक तनाव हैं। इसके अलावा, मिट्टी का क्षरण, उथलेभूमि, कम पानी की प्रतिधारण क्षमता आदि भौतिक तनाव के बढ़ते प्रभाव के कारण, देश की उत्पादकता निरंतर घट रही है। विशेषकर महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश जैसे सबसे अधिक फल देने वाले राज्यों जहां लगभग 40% मिट्टी उथले बेसाल्टिक/लाल मिट्टी है और इन्हें सिंचाई मुख्य रूप से बारिश का पानी पर आश्रित हैं। इस राज्यो मे केवल एक–पांचवा क्षेत्र सिंचाई के अधीन है।

अनुसंधान पहल ने विभिन्न पर्यावरणीय घटकों का बागवानी फसलों पर पारंपरिक प्रभावपर ज़ोर देते हुए बागवानीफसलों के विज्ञान और प्रबंधन की हमारी समझ में काफी सुधार किया है। उत्तापदक की समस्या को दूर करने के लिए ऑन साइट मिट्टी और जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों जैसे ट्रेन्चिंग, स्ट्रिप, वर्गीकृत फैरो पर फसल की वृद्धि बढ़ाने के लिए वकालत की जा रही है जबकि ऑफ–साइट तकनीकों में वर्षा फल का भंडारण परिवहन बहु–चरण–पम्पिंग, पानी के टैंकरों और ड्रिप सिंचाई आदी शामिल है।लेकिन फलों के पेड़ को जड़का प्रसार ठीक न होने के कारण सबसे अधिक नुकसान होता है। मूर्रम/पथरीली मिट्टी में मृदा, पानी एवं पोशाक तत्वों की मात्र अपर्याप्त होती है। इसलिए, इस प्रकार की मिट्टी मे फलों के पेड़ों की सफल खेती के लिए रोपण तकनीकों में एक प्रमुख बदलाव की आवश्यकता है।फलों के पेड़ के पौधे का वृक्षारोपण और प्रबंधन के लिए खंत की तैयारी बागों के लिए सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसका उद्देश्य पौधों कोपरिवेशक अनुकूल बनाया जाता है। भाकृअनुप–राष्ट्रिय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती में हाल ही में रोपण तकनीकों और साइट प्रबंधन में परिवर्तन के विषयमे शोध किया जा रहा है। इससे उथले बेसाल्टिक मिट्टी में वृक्षारोपण की प्रारंभिक वृद्धि को बढ़ाया जा सकता है। इसलिए, हमने उत्पादकों के लाभों के लिए बेसाल्टिक चट्टानी इलाके पर विभिन्न बागों की फसलों की स्थापना की और हमारे अनुभवों से उपलब्ध जानकारी किसानों को दी जा रही है।

मृदा तनाव को दूर करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के रोपण विधियां :

1. बड़े गड्ढे और भूमिगत जल संचयन

इस विधि मे फलों के पौधों को लगाए जाने के लिए 2×2×2 फीट गड्ढा खुदाई करके और उसमे मिट्टी, रेत और एफवायएम के मिश्रण से भरते है। लेकिन उथले मिट्टी में, इस पद्धति से बाग लगाने से नियमित रूप सेअल्प वर्षाव, आवर्ती सूखे की दशा को कम सहन करना पड़ता है, और पौधों को नमीसंबंधी तनाव से बचाती हैं। इसलिए, इन मिट्टी मे जल भंडारण क्षमता बढ़ाने के लिए और बेहतर (जड़) का प्रसार को बढ़ाने के लिए, बड़े गड्ढे बनाने की सलाह दी जाती है। इस प्रकार की रोपाई मुख्य रूप सेअनार जैसे उथले जड़ें वाले पेड़ के लिए उपयुक्त है। अंगूर में, पौधों के बीच की दूरी बहुत कम होती है, वहा खड़ी खुदाई उपयुक्त है। हालांकि, बड़े गड्ढे.मे लगाए जाने पर भी गहरे जड़ें वाले पौधों जैसे चीकू, बेर और अमरूद के लिए मूल रूप से अक्सर विकास में बाधा डालती हैं। इसके अलावा, नल जड़ पद्धति/तंत्र होने से, मुख्य रूट में खड़ी संरेखण की प्रवृत्ति होती है, जब यह गहरा परतों में प्रवेश करती है। इसलिए,जड़ केविकास के लिए अधिक से अधिक गहरा मिट्टी की मात्रा प्रदान करने के लिए, रोपण स्थल के नीचे के 1.0×1.0×1.0 मी गड्ढे में नीचे विशिष्ट नियंत्रित माइक्रो–ब्लास्टिंग करवा के नीचे के स्तर को विखंडित किया गया। विस्फोट से चट्टान छोटे टुकड़ों के रूप में विस्थापित हो जाती है। ये मिट्टी अत्यधिक झरझरा होती है, फलस्वरूप वर्षा का पानी तेजी से बढ़ जाती है और ब्लास्ट किया गया स्थल में घुस जाता है जहां से नीचे के सधन चट्टान कारण पानी आगे नहीं बढ़ पाती है। इन गड्ढे मे गहरी जड़ आसानी से प्रवेश की सुविधा प्रदान कर जाती हैं और जल भंडारण मे भी सहायक होती है।और गर्मी मे सूखे के दौरान वृक्षों की जड़ें बढ़ने मे मद्द करती है। इसलिए, यह रोपण की यह विधि' न केवल उपसतह जल संचयन में मदद करती हैं

और फलों के पेड़ों को तेजी से बढ़ने मे मद्द करती है। इस तकनीक से खेतों में पानी का भंडारण करने से अधिक लाभ होता है ठिबक सिंचन प्रणाली का उपयोग का जल के वस्पीकरण दूयारा नुकसान को कम किया जा सकता है व पानी की के उपयोग की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। उपरोक्त तरीकों से तीन अलग–अलग फलों के लिमीटर मिटर गहरी), बड़ी पिट (1.0×1.0 मी) और खाई/ट्रेंच (1.0×1.0 मी) बनाई गई है। मिट्टी में पानी और पोषक तत्वों को सुधार करने के लिए इन गड्ढो मे निकली गई मिट्टी और एफवाईएम को समान अनुपात के साथ मिश्रण करके गढे को पुन: भरा गया। वास्तव में इस तकनीक ने जड़ों के प्रसार के लिए बेहतर जल प्रणालियों और मिट्टी की मात्रा के अभाव को जन्म दिया और इस प्रकार प्रत्यारोपित फल के पौधों की बेहतर वृद्धि हुई। ये तकनीक से गड्ढे में जल भंडारण क्षमता बढ़ गई। जब गढे मुरुम और काली मिट्टी के मिश्रण से भरे तब उसका प्रदर्शन बेहतर आ रहा है।

2. स्टोन पिचिंग के साथ चढ़ाया हुआ बिस्तर रोपण

उथले मिट्टी में जड़ों की मात्रा बढ़ने के लिए एयर जड़ के विकास के लिए एक अन्य विकल्प तैयार किया गया है इसमे मिट्टी को खत्म करके व्यापक रूप से उठाए गए बेड, रूट विकास के लिए पर्याप्त ढीली और भुखमरी मिट्टी प्रदान करने के लिए बेहतर लगते हैं। लकीरें बनाने के लिए मिट्टी की मात्रा में वृद्धि करने के लिए, स्क्रैपिंग पहले किया जा सकता है। दो उठाए गए बेड के बीच में बनाई गई विस्तृत चर का उपयोग बारिश से आने वाले पानी के संरक्षण के लिए किया जा सकता है। यह संरचना नारंगी/संतरा जैसे फल के पेड़ों के लिए बेहद उपयुक्त है, और उनकी सक्रिय जड़ सतह पर 1.0 मीटर की गहराई में रहते हैं। इस तरह की तकनीक से एक फायदा होता है जिससे भारी मशीनरी को मुर्रम / बेसाल्टिक चट्टान को विखंडन और नीचे छेदने की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन वाष्पीकरण / रन–ऑफ की स्थिति में उच्च पानी के नुकसान की संभावना जादा होती है। इस पर काबू पाने के लिए घास का प्रयोग वाष्पीकरण रोकने के लिए हो सकता हे। फसल के अवशेषों की अनुपलब्धता के कारण, पथर और काली पॉलिथीन की शीट से पिचिंग किया जाता है।

अंत में यह कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण बारिश के दिनों की संख्या में कमी आई है और उच्च तीव्रता की बारिश की आवृत्ति में वृद्धि हुई है। इसका फल उत्पादकता पर तत्काल प्रभाव दिख रहा है और उथले मिट्टी में लगाए गए फल पौधो पर सबसे ज्यादा प्रभाव दिख रहा है। इसलिए, बागवानी फसलों को उथले और मुरुम वाली मिट्टी के लिए नई तकनीकों को बड़े पैमाने पर उपयोग करके उनकी व्यवहार्यता जांचने की आवश्यकता है। बाजू वाली मिट्टी उठाके बेड बनाए जाते है। आम तौर पर लगभग 0.5 मीटर की ऊंचाई वाली बेड की सलाह दी जाती है ताकि फल के पेड़ लगाए जा सकें। लेकिन शुष्क, बेसाल्टिक परिस्थितियों में, 0.8–1.0 मीटर की न्यूनतम ऊंचाई वाली 1.5 मीटर चौड़ाई।

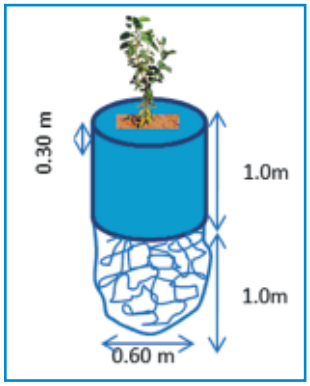

बरमा छेद रोपण

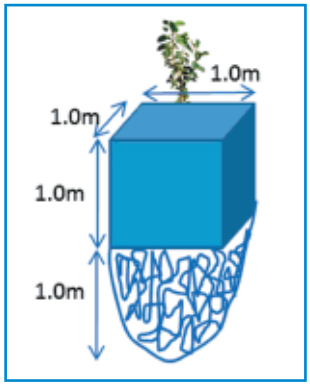

गड्ढे रोपण

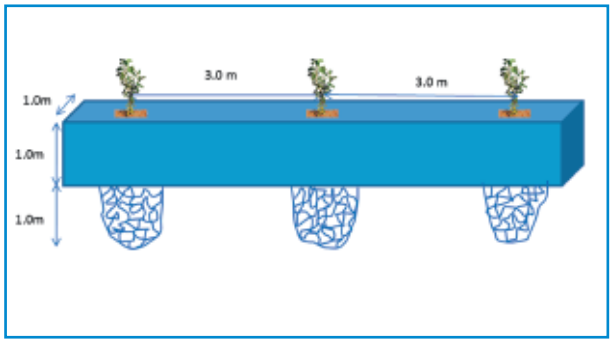

ट्रेंच रोपण

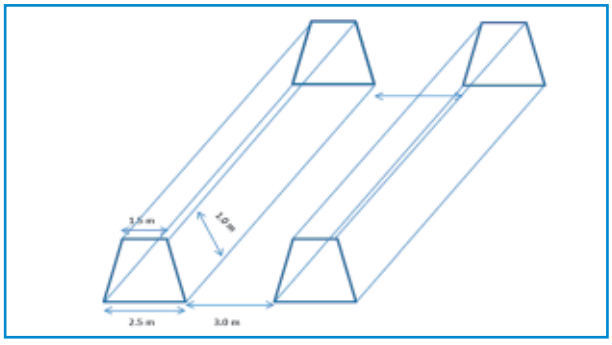
उठाया बिस्तर रोपण

बागानों की स्थापना के लिए अनुकूलित विभिन्न रोपण विधियों का एक योजनाबद्ध आरेख

भारी मशिनरीव्दारा रिपींग और चेनिंग

गड्ढे का निर्माण

ट्रेंच का निर्माण

अलग–अलग मिश्रण से गड्ढे भरना

अनार बाग का प्रदर्शन

नागपुर मंडारिन का उत्पादन

आईसीएआर-एनआईएएसएम मे विभिन्न अभिनव रोपण तकनीकों का उपयोग कर बगीचों की स्थापना

◆ ◆ ◆

अजैविक स्ट्रैस मे मधुमक्खियों का पालन

राजकुमार वी, एन पी सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रेस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, बारामती, 413115,पुणे, महाराष्ट्र।

पौधों में मधुमक्खियां परागण और बीज विकास में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। इन पौधों को पुनरुत्पादन के लिए पराग की आवश्यकता होती है, और कई पौधों परागण के रूप में मधुमक्खियों या अन्य कीड़ों पर निर्भर करती हैं। जब मधुमक्खी एक पौधे के फूल से पराग एकत्र करता है और अगले फूल में जाता है, तब परागण क्रिया होता है इस से उच्च गुणवत्तावाली बीज की उत्पादन होगा।

मधुमक्खियों, एपिडे (Apidae) परिवार के सदस्स्य हैं, वेअमृत और पराग इकट्ठा करते है। मधुमक्खियों के कई विभिन्न प्रकार के होते हैं। संभवतः 20,000 प्रजातियों, और वहां उन दोनों के बीच कई मतभेद भी हैं। कुछ शहद बनाते हैं और कुछ नहीं। कुछ डंक मार सकतें है, जबकि अन्य नहीं कर सकते हैं।मधुमक्खियों एक सामाजिक कीड़े है कि रंग में भिन्नता है, आमतौर पर एक पीले भूरे रंग से, एक गहरे भूरे रंग के लिए, मधुमक्खियों के प्रकार पर निर्भर करता है ।मधुमक्खियों लगभग 12.5 ॥ लंबे और शरीर पर एक बाल होते हैं वे पराग कलेक्शन में बड़ी भूमिका निभाते है । मधुमक्खियों अपने बच्चों को खिलने के लिए वे फूल से अमृत और पराग इकट्ठा करतें है । मधुमक्खियों में 4 प्रमुख प्रजातियां है वे परागण में अहम भूमिका निभाते है । मधुमक्खियां शहद और मोम बनाने के लिए पालतू प्रजातियों में से एक है । मधुमक्खी रखवाले उन्हे शहद उत्पादन और परागण के लिए पत्ती में पालते है ।मधुमक्खियों एक कॉलोनी में रहते हैं और सालो साल तक एक साथ काम करते है। प्रत्येक कॉलोनी आम तौर पर 20 000 और 80 000 मधुमक्खियों होते है, कार्यकर्ता मधुमक्खियों, एक रानी मधुमक्खी और कई सौ राजा भी शामिल है ।महिला श्रमिक कालोनी का संतुलन बनाते हैं ।मजदूरों को दंश है, लेकिन केवल इनका इस्तेमाल करने से उनका और उनकी कॉलोनी का बचाव होता है और चुभने के बाद वे मर जाएगी ।संसारभर में तकरीवन 20,000 प्रकार की मक्खियां पाई जाती हैं जिनमे से केवल 4 प्रजातियां ही शहद पैदा करती हैं ।

मधुमक्खी की विभिन्न प्रजातियां

1. **युरोपियन/इटालियन मधुमक्खी, *एपिस मेलिप्फेरा*:** पहला मधुमक्खियों पालन करने के लिए उत्तरी अमेरिका में लाया गया था। वे कोमल और व्यापक भाग में फैले हुए है, क्योंकि वे तो विभिंन जलवायु वातावरण के लिए अनुकूलित हैं। उनके शरीर में पीले–भूरे और गहरे भूरे रंग के बैंड होते हैं। इन मधुमक्खियों जल्दी से प्रजनन और सर्दियों में एक बड़ी कॉलोनी रखने की क्षमता । सर्दियों में जीवित रहने के लिए अधिक शहद और पराग संग्रहीत करना जरुरी है। शहद की वार्षिक उपज प्रति कॉलोनी 45 से 180 किलोग्राम है। यह प्रजातियां अब देश में अच्छी तरह से स्थापित हुई हैं और मधुमक्खी उपनिवेशों के पालन में धीरे–धीरे एपीस सेरेना इंडिका उपनिवेशों की जगह ले रही हैं।

2. **बृहत्काय मधुमक्खी, *एपिस डोर्साठा*:** यह सभी शहद मधुमक्खी प्रजातियों में सबसे बड़ी प्रजाति है। यह एक मीटर व्यास का एक विशाल खुले जगहा पर छत्ते बनाता है। छत्ते जंगल में खड़ी चट्टानों और यहां तक कि राफ्टों के किनारे पेड़ और इमारतों की अपर्याप्त शाखाओं से पूरी तरह उजागर और लटका हुआ रहेता है। यह बहुत सारे शहद पैदा करता है और एक कॉलोनी से वार्षिक उपज लगभग 37 किग्रा होता है। बाजार में बेचा शहद के प्रमुख हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी चिड़चिड़ापन, अत्यधिक क्रूर प्रकृति और अक्सर छिद्रों को त्यागने की आदत के कारण मधुमक्खियों की पालन प्रक्रिया में एसका उपयोग करना संभव नहीं है। पेशेवर शहद जमाकर्ता छत्ते से शहद और मोम इकट्ठा करते हैं।

3. **भारतीय मधुमक्खी (Indian bee), *एपिस सेरेना इंडिका*:** यह एक आम भारतीय मधुमक्खी है जो पूरे देश में मैदानों के साथ–साथ जंगल में भी पाया जाता है। यह बृहत्काय मधुमक्खी से छोटा और छोटी मधुमक्खी से बड़ा है। यह गुहाओं, पेड़, गुफाओं और ऐसे छिपे हुए स्थानों के हॉलों में कई समांतर छत्ते बनाता है। मैदानों में छत्ते के प्रवेश द्वार की दिशा के समानांतर होते हैं और ठंडे क्षेत्रों में प्रवेश के लिए दाहिने दिशा में होते हैं। यह पालन करने के लिए सक्षम है और आमतौर पर दक्षिण भारत में इसका पालन किया जाता है। शहद की वार्षिक उपज प्रति कॉलोनी 2 से 5 किलोग्राम है। एक रानी मधुमक्खी प्रति दिन लगभग 350–1000 अंडे रख सकती है।

4. **छोटी मधुमक्खी, *एपिस फ्लोरिया*:** इसे छोटी मधुमक्खी के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह अन्य सभी मधुमक्खीयों से भी छोटा है। यह केवल मैदानी इलाकों में देखा जाता है। यह झाड़ी के पौधे और छत के कोनों पर छोटे छत्ते भी बनाता है। एह बहुत कम शहद पैदा करता है और शहद की वार्षिक उपज 0.5 से 1 किलो होती है। इसका पालन करने में उपयोग नहीं करतें है। एक रानी मधुमक्खी प्रति दिन लगभग 323–365 अंडे रख सकती है।

परागण में मधुमक्खियों का महत्व: फूलों की पौधों की दुनिया की लगभग 300,000 प्रजातियों की प्रजनन प्रक्रिया में परागण एक आवश्यक कदम है क्योंकि आमतौर पर इसे बीज के उत्पादन के लिए आवश्यक होता है।परागण अजैविक परिणाम हवा और पानी जैसे ताकतों की कार्रवाई से हो सकता है,लेकिन 80% एंजियोस्पर्म परागण के लिए जानवर जिनमें चमगादड़, मक्खियों, तितलियों, बीटल और अन्य कीड़े शामिल हैं।बहुमत वाले परागक कीड़े हैं, और उनमें से अधिकांश मधुमक्खी हैं। मधुमक्खी भोजन के लिए फूलों से पराग और अमृत एकत्र करते हैं, प्रक्रिया में पराग स्थानांतरित करते हैं।परागण मधुमक्खियों कि सबसे महत्वपूर्ण बात है।परागण पौधों को प्रजननकरने के लिए आवश्यक है, और इतने सारे पौधों मधुमक्खियों या परागण के रूप में अन्य कीड़ों पर निर्भर हैं ।जब एक मधुमक्खी एक संयंत्र के फूल से अमृत और पराग इकट्ठा करते है, पुंकेसर से कुछ पराग फूल के पुरुष प्रजनन अंग उसके शरीर के बालों में चिपक जाती है। जब वह अगले फूल का दौरा, इस पराग कुछ के पराग मादा पुस्प के स्टिग्मा पर गिर जाता है।जब ऐसा होता है, निषेचन संभव है, और फल व बीज को विकसित कर सकते हैं । फसल या पौधे या झाड जो परागण के लिए मधुमाखियों पर निर्भर होते है, जैसे की भिंडी, आलू, काजू, स्ट्रॉबेर्री, सरसों, पत्तागोबी, फूलगोबी, तुर, मिरची, कॉटन, तरबूज, पपीता, ककड़ी, नारियल, लौकी, नींबू, आम, गाजर, सेव, बादाम, स्वीट बेर्री, अनार, अंगूर इत्यादि।

विभिन्न मौसमों के दौरान मधुमक्खियों लिए खाद्य या वनस्पति

बारिश का मौसम	भुट्टा, लिम्बू, आम, चिक्कु
सर्दियों का मौसम	अजवेन, धनिया
गर्मी का मौसम	लूसर्न, सूर्यफूल, बाजरा

पौधे या फसल जो अमृत का अच्छा स्रोत हैं, एमली, मोरींगा, नीम, प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा, सोपनट झाड,युकलिप्टुसऔर पोंग्यमियाएत्यादी । पौधे या फसल जो पराग का अच्छा स्रोत हैं, जोवार, मीठा आल, तंबाकू, बाजरा, नारियल, गुलाब के फूल, एरंड, अनार, डेट पाम इत्यादि। पौधे या फसल जो पराग और अमृत का अच्छे स्रोत हैं, पिच, नींबू, अमरूद, सेब,सूर्यफूल, पियर, आम, प्लम, केला इत्यादि।

पौधे मधुमक्खियों को कैसे आकर्षित करते हैं: पौधों परागण के लिए मधुमक्खियों और अन्य कीड़ों पर निर्भर होतें है। और इसलिए वे समय के साथ उन्हें और अधिक आकर्षक बनानेके लिए अनुकूलित हुएं है। पौधों के फ्लैट या ट्यूबलर फूल में बहुत सारी पराग और अमृत होने से मधुमक्खियों के लिए और अधिक आकर्षित होते है। फूल की खुशबू और उसके चमकीले रंग मधुमक्खियों के लिए विशेष रूप से अपील कर सकते हैं, और वे मधुमक्खियों को आकर्षित करते है।

पराग और अमृत के लिए सूर्यफूल की खेती

नारियल मे मधुमाखियों की गतिविधियाँ सन्फ़्लोवर में मधुमाखियाँ

मधुमाखियों की पेटी

मधुमाखियों की कॉलोनी

मधुमक्खी की प्रजातियां

मधुमक्खियों की 20,000 से ज्यादा प्रजातियाँ है लेकिन इनमें से सिर्फ 4 ही शहद बना सकती है. एक छत्ते में 20 से 60 हजार मादा मधुमक्खियाँ, कुछ सौ नर मधुमक्खियाँ और 1 रानी मधुमक्खी होती है. इनका छत्ता मोम से बना होता है जो इनके पेट की ग्रंथियों से निकलता है ।सबसे जानी पहचानी मक्खी है रानी मक्खी यह मक्खी सिर्फ़ चार से पांच वर्ष तक जिंदा रहती हैं। रानी मधुमक्खी (Queen Bee) पैदा क्यों नही होती, ये बनाई क्यों जाती है : वर्कर मधुमक्खियाँ मौजूदा क्वीन के अंडे को फर्टीलाइज़ करके मोम की 20 कोशिकाएँ तैयार करती है. फिर युवा नर्स मधुमक्खियाँ, queen के लार्वा से तैयार एक विशेष भोजन जिसे 'Royal Jelly' कहा जाता है, कि मदद से मोम के अंदर कोशिकाएँ निर्मित करती है. ये प्रकिया तब तक जारी रहती है जब तक कोशिकाओं की लंबाई 25 ाा तक न हो जाए. निर्माण की प्रकिया के 9 दिन बाद ये कोशिकाएँ मोम की परत से पूरी तरह ढक दी जाती है. आगे चलकर इसी से रानी मधुमक्खी तैयार होती है.

रानी मधुमक्खी लगातार एक खास तरह का केमिकल 'फेरोमोन्स' निकालती रहती है जब यह मर जाती है तो काम करने वाली मधुमक्खियों को इसकी महक मिलनी बंद हो जाती है। जिससे उन्हें पता चल छाता है कि रानी या तो मर गई या फिर छत्ता छोड़कर चली गई. रानी मधुमक्खी के मरने से पूरे छत्ते का विनाश हो सकता है क्योंकि यदि ये मर गई तो फिर नए अंडे कौन पैदा करेगा. इसकी मौत के बाद काम करने वाली मधुमक्खियों को सिर्फ 3 दिन के अंदर–अंदर कोशिका निर्माण कर नई ाशिशप लशश बनानी पड़ती है। दूसरी तरह की मक्खी है ड्रोनमक्खी यह मधुमक्खियां डंक नहीं मारती बल्कि इनका काम सिर्फ़ रानी मक्खी को अंडे देने में मदद करना होता है।तीसरे प्रकार की मक्खियाँ सबसे छोटी मक्खियाँ होती हैं इनकी उम्र सिर्फ 40 से 45 दिनों तक होती है जब यह किसी को डंक मारती हैं तो मर जाती हैं।नर मधुमक्खी तो केवल रानी के साथ यौन–क्रियाकरने के पैदा लिए होते है।

मधुमक्खी पालन में उपयोगी उपकरण: मधुमक्खी पालन में निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया गया था।

मधुमक्खी नकाब : मधुमक्खी पालन करने वालों के चेहरे को ढक के लिए उपयोग किया जाता है।

ग्लोवस: मधुमक्खी के डंक से बचाने के लिए इस्तेमाल किया ।

शहद स्क्रेपर: मधुमक्खी का मोम और कोंब्स स्क्रपिंग के लिए प्रयोग किया जाता है।

स्मोकर : मधुमक्खियों को दूर करने के लिए धुवा उत्पादन करने के लिए प्रयोग किया जाता था।

शहद एक्स्ट्राक्टोर: यह ड्रम होता है जिसमें अन सुलझा फ्रेम घुमाए जाते हैं ताकि केन्द्रा पसारक बल के कारण शहद निकाला जा सके।

कोम्ब कट्टर: पुरानी कॉम्ब्स काटने और हटाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

फ्रेम ग्रीप्पर: हैव से फ्रेम हटाने के लिए इस्तेमाल किया।

रानी पिंजरा: यह रानी को पिंजरे मे पेश करने वाली साधारण आयताकार है।

झुंड बैग: यह झुंड बैग में झुंड डालने के लिए है उपयोगी है। मधुमक्खियों में फ्रेम मे जानेके लिए झुंड बैग खोला जाता है।

अनक्यपिंगटोकरी: यह टोकरी है जो अनक्यपिंग के दौरान शहद कोशिकाओं की कैप्स एकत्र करने के लिए प्रयोग की जाती है।

शंकु रानी पिंजरे: शंकु के आकार के पिंजरों में रानी के परिवहन के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

कोम्ब फाउंडेशन: यह नियमित मजबूत कार्यकर्ता ब्रूड सेल प्राप्त करने में मदद करता है।

कोल्ड अनक्यपिंगच्याकू : शहद निकालने वाले बम से पहले भरने के बाद शहद कोशिकाओं को चुरा लेने वाली टोपी को हटाने के लिए प्रयोग किया जाता था।

प्रवेश गार्ड: गेट प्रवेश द्वार के सामने रखा जाता है और रानी को भी अंदर रखनेमे मदत करता है और इस प्रकार झुकाव को रोकने में मदद करता है।

झुंड पकड़ने टोकरी: यह बाम्बू से बना एक छोटी टोकरी है और इसका उपयोग एक झुंड इकट्ठा करने और इसे वापस हाइव में लाने के लिए किया उपयोग किया जाता है।

डाम्मी बोर्ड: यह एक लकड़ी का विभाजन है जो सामान्य फ्रेम की तरह लम्बवत फिट बैठता है और एक उबले दीवार के रूप में कार्य करता है।

मधुमाखियों का प्रबंधन

1) **वसंत मौसम मे मधुमाखियों का प्रबंधन:** अच्छी तरहा से सफाई करना, भुखमरी से बचाए, बीमारी निरीक्षण करे, ब्रूड मैनिप्ल्यूशन, शहद फसल के छिद्र नियंत्रण, हाइव झुंड नियंत्रण के भीतर विस्तार के लिए जगह बनाते हैं।

2) **अफसीसन प्रबंधन:** कॉलोनी को जीवित रखने के लिए छिद्र में पर्याप्त शहद छोड़ा जा सकता है। बारिश और हवा से रक्षा करें। दुश्मन कीड़ों से रक्षा करें। अस्पष्ट स्थिति का ख्याल रखना । उपनिवेशों का नियमित निरीक्षण। जब अमृत उपलब्ध नहीं है उपनिवेशों में कॉलोनियों को 300 से 500 मिलीलीटर चीनी सिरप देना जाना चाहिए ।

3) **गर्मी के मौसम मे मधुमाखियों का प्रबंधन:** हाइवको छाया प्रदान करें,साफ पानी प्रदान करें,चीनी सिरप देना जाना चाहिए, रोग और दूसरे कीड़ों का प्रबंधन, गरमियों मे हाइव पर ठंडा पानी छिड़कना चाहिए,कोलोनिस को स्ट्राँग रखना चाहिए, रानी मधुमाखी को दोबारा कॉलोनी मे रखना चाहिए।

4) **सर्दी के मौसम मे मधुमाखियों का प्रबंधन:** कोलोनिएस को सूर्य के किरणों के नीचे रखना, सारे द्वार बंद रखना, वीक कोलोनिएस मजबूत कॉलोनी से जोड़ना, कॉलोनी को मजबूत रखना,प्रवेश द्वार हवा के विपरीत रखें ।

◆ ◆ ◆

'पादप माईक्रोबायोम' का अध्ययन: सूखा स्ट्रैस प्रबंधन में एक नया आयाम

सतीश कुमार, महेश कुमार, ए के सिंह, जगदीश राणे, एन पी सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रेस प्रबंधन संस्थान, माळेगाँव, बारामती, 413115, पुणे , महाराष्ट्र

परिचय

पोधों एवम सूक्षम जीवों का सह–अस्तित्व बहुत ही पुराना है। उत्पति क्रम के दौरान जबसे पौधे नुमा जीव बने, तब ही से सूक्ष्म जीव उनके साथ अटूट रूप से बंधे रहे हैं। पोधो के लगभग हर हिस्से में जैसे की जड़ों में, पतों पर, फूलों में, यहाँ तक की पोधो के अंदरूनी हिस्से, जैसे की जाइलम और फ्लोएम रस में भी विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों का पोधो के द्वारा किए जाने वाले विभिन क्रिया कलापों तथा पोधो के स्वयं की शरीर क्रिया को संचालित केरने में बहुत बड़ा योगदान होता है। ये प्रभाव इतना गहरा हैं की बिना सूक्षम जीवों के सही अध्ययन के पाधों के विभिन शरीर क्रियाओं को समझना कठिन होता है। रचना के आधार पर एक पोधे में जितनी कौशिकाएँ होती हैं, उसकी सतह पर उतने ही या उससे भी कंही अधिक सूक्ष्म जीव मौजूद होते हैं। यह सभी सूक्ष्म जीव मिल कर ही 'पादप माईक्रोबायोम' का निर्माण करते हैं। आमतौर पर पादप उपयोगी, सुक्षंजीवों व्दारा किए जाने वाले कार्यों की प्रस्तुति की गई है, जो की सूक्ष्म जीवों की महता को दर्शाती है।

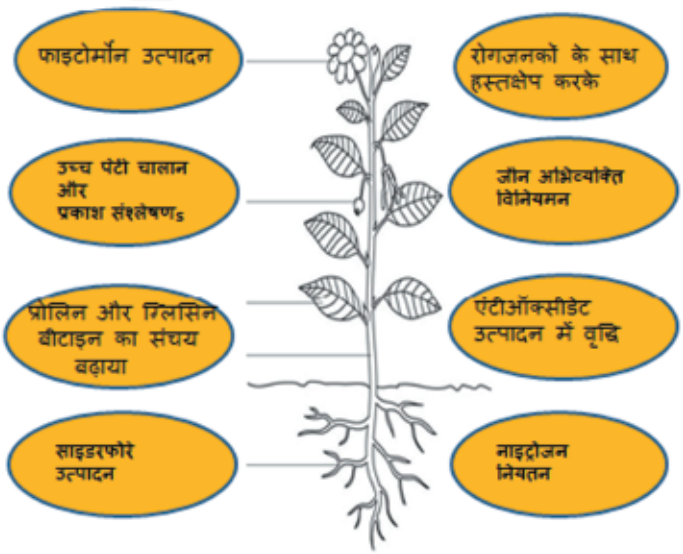

अभी तक किए गए वैज्ञानिक अध्ययन में यह पाया गया है की कुछ प्रकार के सूक्ष्म जीव पोधों को विभिन्न प्रकार के तनाव का सामना करने की क्षमता प्रदान केरते हैं। उदाहरण के तौर पर मरूद्भिद प्रकार के पोधे, जो के अँग्रेजी में जीरोफाएटेस कहलातें हैं, इस प्रकार के सूक्ष्म जीवों का स्रोत हो सकते हैं जो की पोधों को सूखे का सामना करने में अत्यंत मददगार साबित हो सकते हैं। पादप जैव प्रौद्योगिकी के शुरुआती दौर में जो अपेक्षाएँ थी, और जो बाद के वर्षों में पूर्ण ना हो सकी, उसका एक मुख्य कारण यह भी है के हमने 'पादप मीक्रोबिओमे' जो की पादप शरीर क्रिया में इतनी बड़ी भूमिका अदा करता है, को नज़र अंदाज़ किया है।

मेटाजीनोमिक्स की मदद से सुखा तनाव प्रबंधन

हालांकि, ज्यादातर वैज्ञानिक अध्यन मुख्य रूप से किसी एक विशिष्ट सूक्ष्म जीव का पोधों के लिए उपयोगी गुण या फिर सूक्षम जीव चलित पौधों की वृद्धि गतिविधिक विशेषताओं का वर्णन करती हैं। कुछ चुनिन्दा सूक्ष्म जीवों का इस प्रकार से पृथक्करण रूप से अध्ययन अपने आप में कई विसंगतियों से भरा है, क्योंकि, प्राय सूक्षम जीव 'सूक्ष्म जीव समुदाय' बनाकर ही रहते हैं, जिन्हे कि 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटिएस' भी कहा जाता है। जो पोधे तनावग्रस्त पर्यावरण में पनपते है, उनकी 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटिएस' अक्सर उन पोधों से भिन्न होती, जो कि अनुकूल वातावरण में पनपते हैं। उदाहरण के तौर पर, अति कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाये जाने वाले गेहूं के पोधों कि 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटिस' उन गेंहू के पोधों से नितांत अलग पाई जाएंगी, जो कि अनुकूलित वातावरण में उगाये जाते हैं। अतः सूखा प्रभावित क्षेत्रों के गेहूं के पोधे कि 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटिस' का रचनात्मक एवम संरचनात्मक अध्यन

अंवम तत्सवरूप पाये जाने वाले तुलनात्मक अंतर को पाधों के सूखा तनाव को सहन करने कि क्षमता बढ़ाने के लिए उपयोग जा सकता है। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में उगाये जाने वाले पोधों की 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटिस' का प्रयोग सूखा तनाव प्रबंधन में नीचे प्रस्तुत रूपरेखा के अनुसार किया जा सकता है

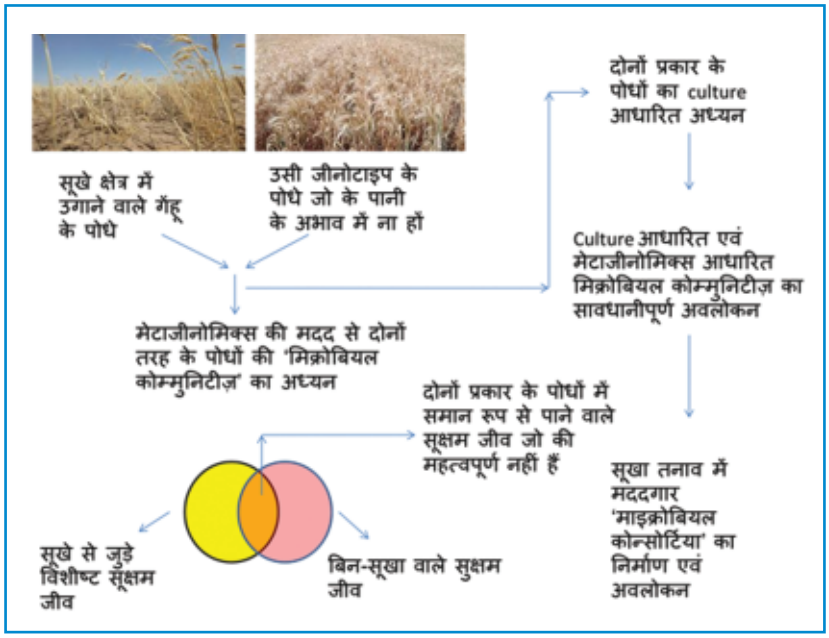

अभी हाल ही में वैज्ञानिक अध्यन से यह पाया गया है के पोधों में सूक्ष्म जीवों का हस्तांतरण वंशानुगत पाया जाता है जो के बीज के माध्यम से होता है। पैरेंट पौधों के फूलों के लिए एंडोफेट 'पैराबर्कहोल्डरिया फाइटोफर्मन' (पीएसजेएन) पेश करके लेखकों ने संतान बीज माइक्रोबायम में अपना समावेश चलाया, जिससे वंश की पीढ़ी को लंबवत विरासत मिलती है। अत: पोधों की 'मिक्रोबियल कोम्मुनिटीज़ का अध्यन सूखा तनाव प्रतिरोधी पौध प्रजनन कार्यक्रम में भी प्रयुक्त की जा सकती हैं।

मेटाजीनोमिक्स में प्रयुक्त होने वाली कुछ तकनीकों का विवरण

'माईकरोबियल कोम्मूनिटिएस' के अध्यन के लिए 16S rRNA जीन का अध्यन करना पड़ता है। 16S rRNA जीन की लंबाई 1.5 kb होती है तथा इसमे नौ hyper-variable खंड होते हैं जिनके डीएनए अनुक्रम की मदद से हम सूक्षम जीवोंको पहचान सकते हैं। इन नौ hyper-variable खंड के डीएनए अनुक्रम संबंधी सूचना को 16S क्लोन लाइब्रेरी बना कर पढ़ा जा सकता है। इस तकनीक की रूपरेखा नीचे दिये गए चित्र में दर्शाई गई है

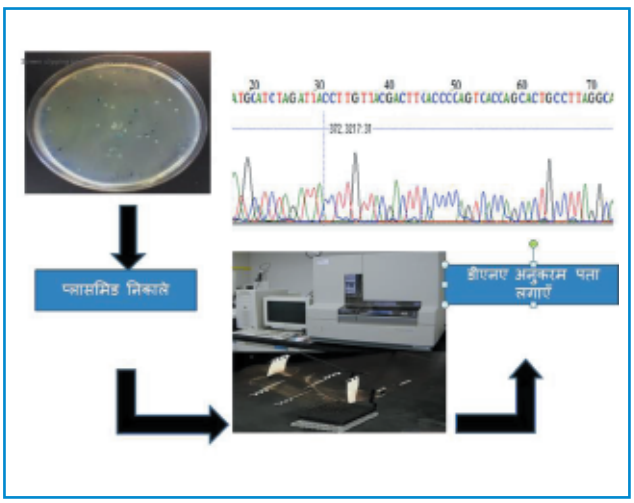

इसके अलावा 'माईकरोबियल कोम्मूनिटिएस' का अध्यन 'नेक्स्ट जेनेरेशन सिक्वेन्सिंग' की मदद से भी किया जा सकता है। 'नैक्सट जेनेरेशन सिक्वेन्सिंग' एक अत्याधुनिक तकनीक है जिसमें के 'माईकरोबियल कोम्मूनिटिएस' के वो सदस्य भी पता लगाये जा सकते हैं जो के बहुत ही क्षीण मात्रा में मौजूद होते हैं। 'शोट्गन मेटाजीनोमिक्स' की मदद से हम सभी प्रकार के सूक्षम जीवों जैसे की फूंगुस, बैक्टीरिया, आर्किया, साइनोबैक्टीरिया, एवम वाइरस का भी पता लगा सकते हैं।

निष्कर्ष

सूक्ष्म जीवों के द्वारा किए जाने वाले पादप उपयोगी कार्यों की फहरिशत बहुत ही वयापक है। सूखे क्षेत्रों में मिलने वाले पोधों से जुड़े सूक्षम जीव इन पोधों को ऐसी तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी बने रहें में खास भूमिका अदा केरत हैं। सूक्ष्म जीव पोधों को तनाव से लड़ने में भी मदद केरते है। हाल ही के दशकों में पोधों से जुड़ी 'माईकरोबियल कोम्मूनिटिएस' को समझने में तकनीकी रूप से बहुत विकास हुआ है। मेटाजीनोमिक्स की मदद से हम 'माईकरोबियल कोम्मूनिटिएस' को समझ सकते है। अत: हमे मेटाजीनोमिक्स आधारित शोध कार्यक्रमों को और अधिक बहुमुखी और व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

◆ ◆ ◆

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मछली उत्पादन में वृद्धि के तरीके

मनोज ब्राह्मणे, मुकेश भेंडारकर
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रेस प्रबंधन संस्थान, माळेगाँव, बारामती, 413115, पुणे , महाराष्ट्र

जलीय कृषि मीठे और समुद्री पानी में मत्स्य उत्पादन में अहम भूमिका निभाती हैं। जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मात्स्यकी उत्पादन में कमी आने की संभावना है। जलवायु परिवर्तन मात्स्यकी पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे प्रभाव डालता है। समुद्र के स्तर का अनुमान 10 सेमी से 100 सेमी तक है, जो नदियों, नदी डेल्टा, लवणता में वृद्धि को प्रभावित करेगा। सागरीय उत्पादकता, समुद्री जल संचलन, प्राथमिक उत्पादक जैसे कि फ़ॉइट्लैंकटन्स और ज़ूप्लांकटोन में परिवर्तन लाएगा और इसलिए खाद्य वेब में बदल जाएगा। बाढ़, तूफान और मानसून वर्षा पैटर्न में चरम घटनाओं की घटना में वृद्धि, मीठे पानी की मात्र में कमी, वायुमंडलीय वार्मिंग जल विज्ञान में परिवर्तन लाएगी, मात्स्यकी को प्रभावित करेगी, ऊट्रोफीकेशन, स्तर–विन्यास, मत्स्य भोजन की और निवास स्थान की हानि जैसे परिणाम जलवायु परिवर्तन से होंगे। इन सभी दुष्परिणामों से निजात पाने के में मात्स्यकी का बड़ा योगदान हो सकता हैं। जलीय कृषि मछली उत्पादन बढ़ाने में, कम पौष्टिक स्तर का पोषक तत्वों को उपयोग लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। ग्रामीण लोग मुख्य रूप से खाद्य पदार्थों के लिए मछली पर निर्भर होते हैं जो उच्च गुणवत्ता वाले मछली बनाने के लिए मत्स्य पालन और जलीय कृषि की प्रमुख भूमिका का सुझाव देते हैं। भारत में, घरेलू मांग 2025 तक 20 लाख तक बढ़कर 1.6 करोड़ टन तक होने की संभावना है।

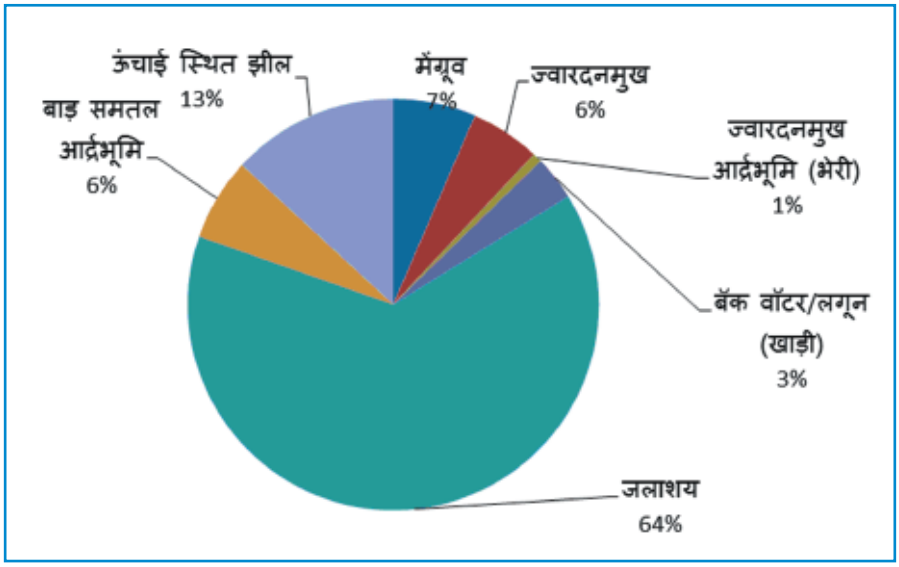

भारत में अंतर्देशीय खुली जल संसाधन की उपलब्धता (नदियों को छोड़कर)

टेबल 1. क्षेत्र, वर्तमान उपज, औसत संभावित पैदावार, कुल उत्पादन और भविष्य में भारत में छोटे, मध्यम और बड़े जलाशयों और आर्द्रभूमि की अनुमानित उपज।

जलाशय	क्षेत्र (million ha)	वर्तमान औसत उपज (Kg/ha/year)	औसत संभावित पैदावार (Kg/ha)	कुल उत्पादन (million ton/year)	अनुमानित उपज (million ton/year) (मत्स्य संसाधन का 90% उपयोग)
छोटे	0.149	174	500	0.743	0.668
मध्यम	0.053	94	250	0.132	0.118
विशाल	0.114	33	100	0.114	0.103
आर्द्रभूमि	0.526	1050	2000	1.108	0.997

जलाशय मात्स्यकी

जलाशय मात्स्यकी को 1000 हेक्टेयर, 1000–5000 हेक्टेयर और 5000 हेक्टेयर के क्षेत्र में छोटे, मध्यम और बड़े क्षेत्रा में वर्गीकृत किया गया है। भारत में 3.41 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में 934 छोटे, 180 मध्यम और 56 बड़े जलाशय हैं। यद्यपि जलाशयों में 500 किलोग्राम/हेक्टेयर की उत्पादन क्षमता है, जबकि छोटे, मध्यम और बड़े जलाशयों में 250 किलोग्राम/हेक्टेयर और 100 किलोग्राम/हेक्टेयर वर्तमान में 110 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर का उत्पादन कर रहे हैं। इस उत्पादन क्षमता को अंतराल अंतर्देशीय जल निकायों (दास बी के, 2017) से मत्स्य उत्पादन का तेजी से बढ़ने का अवसर है। जलाशयों, इसके विशाल संसाधन आकार की वजह से मछली उत्पादन को बढ़ाने की क्षमता के साथ एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिससे मछुआरों की आय में दोहरीकरण होता है। स्वामित्व का मुद्दा, गुणवत्ता और मछली के बीज की उपलब्धता, मछली बीज पालन की कमी, एक विनियमित मछली संग्रहण, मौसम में बदलते पानी के स्तर, मछली के निवास का विनाश और स्वप्रजनन की कमी, विनाशकारी मछली निकालना, वित्तीय संसाधन की उपलब्धता, संस्थागत और नीति समर्थन, मछली संग्रहण में कठिनाई और अंत में प्रशिक्षित कर्मिक (सरकार और मिशल, 2017) की उपलब्धता नहीं होने के कारण जलाशय मात्स्यकी का विकास अपर्याप्त हैं।

मत्स्य जाति की वृद्धि

जलाशय मात्स्यकी की वृद्धि में स्टॉकिंग या प्राकृतिक प्रजनन के माध्यम से मत्स्य स्टॉक का विकास होता हैं। मार्केट डिमांड आधारित मत्स्य जाति की अंगुलिकाय मत्स्यबीज का उपयोग करने से मत्स्य उत्पादन की बढ़ोतरी हो सकती हैं। स्टॉक वृद्धि एक वांछनीय मछली प्रजातियों की प्रजनन आबादी की स्थापना में मदद करती हैं। स्टॉक में बढ़ोतरी के महत्वपूर्ण मानदंड प्रजातियों का चयन, संग्रहण दर और मछली के आकार का संग्रहण पर होता हैं। स्टॉक वृद्धि का मुख्य उद्देश्य स्टॉक किए गए मछलियों को पकड़ना और मछली की आबादी को स्व–भर्ती करके जलाशय को उपयोगी बनाना हैं। इस कार्य में शाकाहारी मछ्ली, जो छोटी खाना श्रृंखला पसंद करती हैं, तेजी से विकसित होती हैं, और बेहतर भोजन रूपांतरित करती हैं, उसे चुना जाता हैं। जलाशयों में भक्षक मछलियों उपलब्धता के मामले 100 मिमी आकार की 250 नंबर / हेक्टेयर / वर्ष या 500 नंबर/ हेक्टेयर / वर्ष घनत्व की सिफारिश की गई हैं (सरकार और मिशल, 2017)।

पालन आधारित मात्स्यकी

पालन आधारित मात्स्यकी को खुले पानी में मत्स्य पालन के रूप में परिभाषित करता है जिसमें मछली की फसल पूरी तरह मछली स्टॉक पर निर्भर करती हैं (दास, 2014)। बाड़ समतल आर्द्रभूमि, छोटे जलाशयों, और अन्य जल निकायों पालन आधारित मात्स्यकी के लिए उपयुक्त हैं। मछली की वृद्धि स्टॉकिंग घनत्व पर आधारित होती हैं, और उसके जिंदा रहने मछली का आकार निश्चित होता हैं। अलीयार, चुल्लियार, मार्कनहल्ली और गुलारिया जलाशयों में पालन आधारित मात्स्यकी 75–316 किलोग्राम / हा / वर्ष तक बढ़ा। पालन आधारित मात्स्यकी मत्स्य उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक प्रभावी तरीका है जहां वांछित मछली प्रजातियों की प्रजनन जलाशय या आर्द्रभूमि की क्षमता से कम हैं। यह पद्धति से मछली उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए मछली का स्टॉकिंग का अंक, सही आकार की मछली, स्टॉकिंग का समय, स्टॉकिंग का घनत्व, मछली पकड़ने के प्रयास, मछ्ली का आकार, प्रजातियों के चयन और मछलीकंद गियर के प्रकार (सरकार और मिशल, 2017) जरूरी हैं। भारतीय प्रमुख कार्प काटला कटाला, लेबियो रोहिता, सिर्रिनस मृगला और छोटे कार्प लेबियो बाटा, लेबियो काबससु विदेशी कार्प, टेनोफरींगोडोन इडेले जैसी कार्प स्टॉकिंग के लिए उपयुक्त हैं।

संलग्नक मत्स्य पालन

पिंजरे और पेन मत्स्य पालन में बाड़ों की व्यवस्था होती है जिसमें मछली को बिक्री योग्य आकार में विकसित किया जाता है। जल निकायों के स्टोकिंग के लिए मछली के बीज को वांछनीय आकार के लिए पिंजरे और पेन उत्कृष्ट प्रणाली हैं। मछलियों को इन पिंजरों में बंदीस्त रखकर, योग्य मात्र में खाना खिलाया जाता हैं ताकि मछलिका मार्केट अनुसार आकार हो, और उसे मार्केट डिमांड आधारित बेचा जाता हैं। यह बाड़े प्रति यूनिट क्षेत्र जल की उत्पादकता में वृद्धि लाते हैं। जलाशयों और झीलों के किनारों पर पेनलगाए जाते हैं जो कि तेज गति से मछली बढ़ने के लिए उपयोग किया जाता हैं। संलग्नक मत्स्यिकी जल के उपयोग

का अनुकूलन करती है, अंगुलिकाए के स्वस्थानी पालन में, मछली के उत्पादन के लिए ट्राफीक ऊर्जा का उपयोग, घास से अछादित जल निकायों का इस्तेमाल करता है, मछली के स्वास्थ्य के रखरखाव को नियंत्रित करता है, और अंत में ग्रामीण और शहरी युवाओं के कौशल विकास में इसका परिणाम होता है, और ग्रामीण भारत में रोजगार और आय उत्पन्न करता है। पिंजरे और पेन पालन मत्स्य गुणवत्ता, मत्स्य बीज़, और मछ्ली की बढ़ती मांग को पूरा करने का उद्देश्य पूर्ति करता है। पिंजरे और पेन मत्स्य बीज़ उत्पादन को पूरा किया जा सकता हैं। बाड़ों का उपयोग कैप्टिव स्टॉक को बनाए रखने, कृत्रिम फीड के उपयोग से बढ़ने, अच्छे पानी की गुणवत्ता प्रबंधन के माध्यम से स्वास्थ्य के रखरखाव, और किसानों द्वारा जरूरी पानी की पानी की उत्पादकता बढ़ाने और किसानों की आय में बढ़ोतरी को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। कम लागत वाली सामग्री जैसे कि बांस, बेंत, लकड़ी का लॉग उथले पानी के क्षेत्रों में कलम बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है जिसमें तेजी से बढ़ती मछलियों और झींगे की खेती की जा सकती है। जलाशयों में मछली उत्पादन में वृद्धि (दास, 2017) में पिंजरे संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

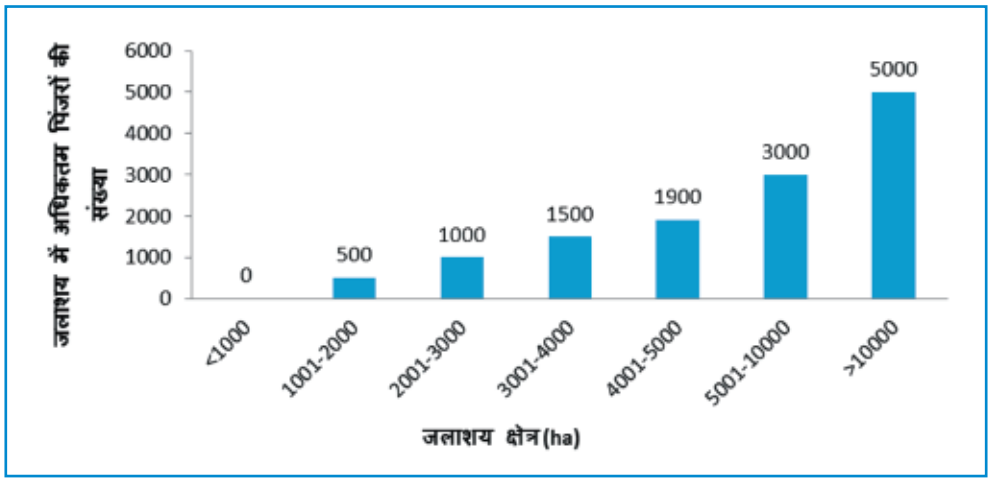

जलाशय के क्षेत्र के आधार पर पिंजरों की अधिकतम संख्या

संलग्नक मत्स्य पालन के लाभ

- सभी उपलब्ध जल क्षेत्र के उपयोग का अनुकूलन करके मछली उपज में वृद्धि करना
- जलाशय संग्रहण और जलीय कृषि के लिए अंगुलिकाए की लागत प्रभावी रूप से बढ़ाना
- मछली के उत्पादन के लिए ट्राफीक संरचना और कार्य का इष्टतम उपयोग
- घास से पीड़ित जलाशयों का उपयोग करना
- मछली पालन और नर्सरी के लिए भूमि संसाधन की आवश्यकता का उन्मूलन
- तेजी से मछ्ली का विकास, आसान फसल का सम्पादन
- मछली की वृद्धि और स्वास्थ पर नियंत्रण
- पिंजरे और पेन संस्कृति के माध्यम से कौशल और रोजगार की निर्मिति

पिंजरे में पालन के लिए कुछ संभावित प्रजातियों में आर्थिक रूप से लाभकारी पंगासायनोडोन हाइपोपथालेमस, मोनोसेक्स गिफ्ट तिलापीआ, ऑरोक्रोमिस निलोटिकस है। लैबियो बाटा, लेबियो रोहिता, ओस्टियोमोग्राम बेलागिरी पेंगाबा, ओम्पाक बिमाकुलाटस पबडा, एनाबस टेस्टोडिनेस, पूनतीस सारणा, लेट्स कैलजियर, एट्रोप्लस सुरटेंसिस, चिटाला चितला (फेथरबैक), चना स्ट्रैटा, चन्ना मारुलीयस, मरेल, वालॉगो एट्टू, शेलफ़िश मैक्रोब्राचियम रोसेनबेर्गि की क्षेत्रीय मांग और उपभोक्ता प्राथमिकता आधारित प्रजातियों महत्वपूर्ण हैं।

बाड़ समतल आर्द्रभूमि मात्स्यकी

बाड़ समतल आर्द्रभूमि नदियोंसे जुड़ी समतल आर्द्रभूमि होती हैं जो की वर्षा काल में बाड़ से प्रभावित होती रहती हैं, और नदियों के निचले इलाकों विशाल मात्र में क्षेत्र को अधिग्रहित करती हैं।बाढ़ के मैदानों में नदियों और नदियों के साथ जुड़ा हुआ है। वे नदी से जुड़े हैं या मानसून बाढ़ के दौरान नदियों के पीछे के प्रवाह से पानी प्राप्त करते हैं। वे गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी प्रणालियों में आम हैं। असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और मणिपुर (दास, 2017) के राज्यों में बाढ़ के मैदान का मत्स्य पालन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

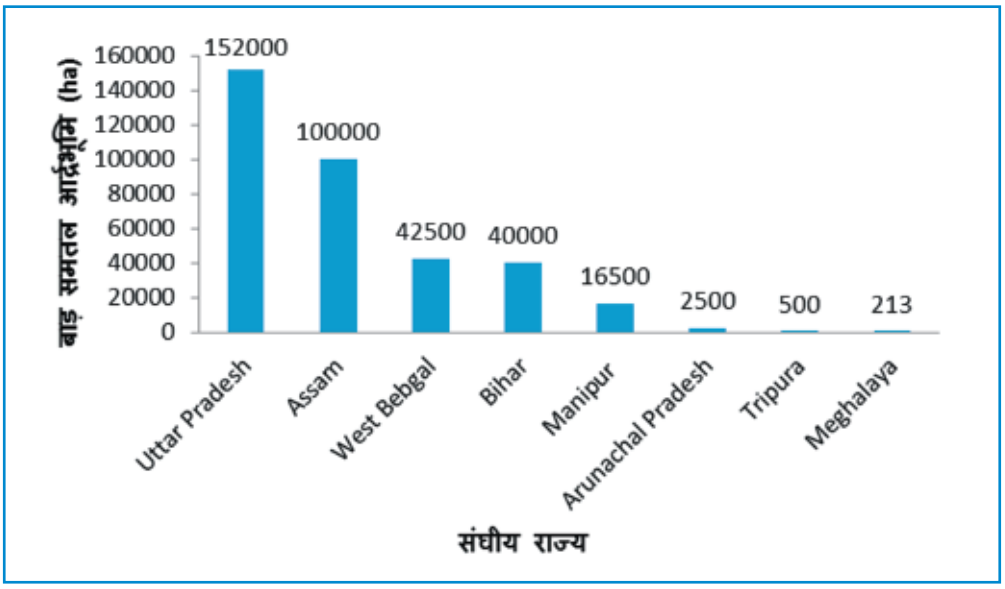

सूखा स्ट्रैस से बचने के उपाय

रूबी साहा, संगिता श्री, पारस नाथ, अनिल कुमार, जनार्दन प्रसाद, पंकज कुमार यादव
भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णियाँ

अनियमित मानसून, बाढ़, सुखा, गर्म हवाए, स्वच्छ जल की उपलब्धता में कमी जैसी जलबायु परिवर्तन ने भारत ही नहीं, अपितु पुरे विश्व को बुरी तरह प्रभावित कर रखा है। जलवायु परिवर्तन से वायुमंडल का सामान्य चक्र असामान्य हो जाता है । फलस्वरूप हमें अनेक विषम परिस्थितियो का सामना करना पड रहा है । भारत में गर्मी के बढ़ रहे स्वरुप से हम सभी वाकिफ हैं, पर अब इसका दुष्प्रभाव वन–जीवन, कृषि, रोग– वृद्धि, स्थानीय मौसम, समुद्र–तल वृद्धि, स्थानीय मौसम, समुद्र तल – वृद्धि, सुनामी आदि पर पड रहा है । बढती आबादी, तीव्र शहरीकरण, औद्योगिकी––करण तथा निर्वनीकरण का प्रभाव जैव– संसाधनों पर पड़ा है । खेती व् खेती योग्य भूमि, प्राकृतिक संसाधनों का कम होना तथा जैव–अजैव दबाव में वृद्धि ने कठनाइयों को और भी बढा दिया है । यदि आवश्यक निवारक कदम नहीं उठाये गए तो इसका गंभीर दुष्प्रभाव कृषि उत्पाद पर पड़ेगा । लगभग 50% जीव– जंतु ग्लोबल वार्मिंग से प्रभावित हो सकते हैं । हमारी मृदा का लगभग 70% (सत्तर प्रतिशत) जैविक कार्बन व् अन्य पोषक तत्व व् सूक्ष्म पोषक तत्व के अभाव में है । रसायनों व कीटनाशको के प्रयोग और औद्योगिक अपशिष्टो से जल व मृदा में विषाक्तता बढ़ रही है । भूमि सुलभता व कृषि उत्पादन में कमी बढती आबादी के भरण पोषण पर बहुत बड़ी चुनौती है।

अजैविक तनाव उत्पन करने वाले कारक जैसे की सूखा, आद्रता, नमक, ठंड, तापमान, भारी वर्षा, धातु इत्यादी पौधे के विकास और फसल उत्पादकता को काफी प्रभावित करते हैं । इन दिनों बदलते मौसम और पर्यावरण में नकारात्मक बदलाव के कारण पौधो में सूखा स्ट्रैस (Drought stress) उत्पन्न हो रहा है और इस स्ट्रैस की वजह से खाद्य सुरक्षा को बहुत ही खतरा है।

आमतौर पर अपने पूरे जीवन – काल में पौधे बहुत प्रकार के स्ट्रैस से जूझते हैं । इन तनाव की वजह से पौधे पुर्णतया विकसित नहीं हो पाते, फलत: समग्र उत्पादकता में कमी आ जाती है ।

विमिन्न प्रकार के अजैविक तनावो में से सूखे की वजह से होनेवाला स्ट्रैस, पौधे के लिए ज्यादा विध्वंशकारी है । एक पौधे को पूर्णतया विकसित होने मे उसके वृद्धि व विकास के साथ ही उसे अपना जीवन चक्र पूरा करने के क्रम में नमी की कमी से होने वाले स्ट्रैस को (drought Stress) या सूखे से स्ट्रैस कहते है । वर्षा में कमी, बाष्पोत्सर्जन मेंऋ अधिकता, मिट्टी का बलुई या पहाड़ी होना जैसी परिस्थितियां सूखे से स्ट्रैस (drought stress) को जन्म देती हैं ।

शुरुवाती सूखे की स्थिति मे पौधे जीवित रह भी जाए पर लम्बे समयांतराल के drought stress से पौधो में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है । जैसा की हम सभी जानते है, किसी भी पौधे को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए इन पोषक तत्वों की आवश्कता पड़ती है इनमे से सुक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्कता मुख्य पोषक तत्वों की अपेक्षा कम मात्रा में होती है । परन्तु ये भी मुख्य पोषक तत्वों के समान उतने ही आवश्यक है, क्यूंकि प्रत्येक पोषक तत्व को पौधे के अन्दर कुछ विशेष कार्य करने होते हैं और एक पोषक तत्व की कमी दूसरे पोषक तत्वों द्वारा दूर नहीं की जा सकती है । इन पोषक तत्वों की कमी से पौधों की जीवन क्रिया में बाधा पड़ती है तथा उसके विभिन्न अंगो खासकर पत्तियों में तत्व विशेष की कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं । जिससे फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड रहा है ।

लंबी अवधि के लिए अगर पौधे drought stress या सूखे से तनाव में होते हैं तो वे अंदरूनी स्तर पर काफी कमजोर हो जाते हैं और इन पौधों में कीट व अन्य व्याधियो के संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है । अत्यधिक बाष्पोत्सर्जन के साथ बारिश में लगातार कमी कृषि में सूखे की स्थिति को और भी भयानक बना देती है । मानसूनी वर्षा से जल पाने वाले भारत जैसे देशो में वर्षा जल का उपयोग व् संग्रहण के बजाय बहुमूल्य भूगभीर्य जलस्रोत का खतरनाक तरीके से दोहन होने से उस क्षेत्र के कुछ तालाब, जलाशय और अन्य जलीय स्रोत सूख रहे हैं । सूखे के तनाव से बचने के लिए जो सबसे अहम उपाय है वो है, जल संचयन और जल संरक्षण । पानी की जितनी जरुरत हो, उतना ही खर्च करे । बूंद बूंद सिंचाई व् जल छिडकाव विधि, मल्चिंग व् बेड पौधरोपण, चेकडैम और गड्ढा बनाना, ऐसी बहुत सी विधियाँ हैं जिससे जल संचयन और संरक्षण किया जा सकता है । जल संरक्षण की इन विधियों से बंजर भूमि पर भी लहलहाते खेत देखे जा सकते हैं।

सूखा स्ट्रैस के कारण पौधे में परीलक्षित बदलाव निम्न प्रकार से हैं

1. सूखा स्ट्रैस कि स्थिति में सर्वप्रथम अधिकतर फसलो में जो परिलक्षित बदलाव हमें देखने को मिलता है, उनमे सबसे म्हत्वपूर्ण है, पत्तियो का रंग पीला पडने लगता है।
2. सूखा स्ट्रैस कि स्थिती अगर लंबे समय तक बनी रहती है तो पौधे के अग्रभाग से पत्तियाँ सूखने लगती हैं।
3. पौधे के वृद्धि व विकास दर में भी कमी पडने लगता है । पत्तियो के विस्तार में कमी होने लगती है यानी पत्तियाँ छोटी छोटी होती है।
4. अगर हम कोशिका स्तर पर बात करे तो कोशिका विभाजन की दर में कमी होने लगती है।
5. बीजो में अंकुरण की समस्या होगी, कई पौधो का पनपना मुश्किल हो जाता है। अंकुरित हुए नये पौधो की जमीन पे पकड मजबूत नही होगी।
6. फसल उत्पादन में कमी होती है जो कि drought stress की अवधि व पौधे कि किस अवस्था पर सूखे से ज्यादा तनाव पडा है, उसपर निर्भर करेगा।
7. सामान्यतः हर पौधो के जल उपयोग क्षमता (WUE) में कमी महसूस की जाती है ।
8. अलग–अलग पौधो में सूखा स्ट्रैस कि वजह से अलग–अलग प्रतिक्रियाएँ होती हैं । जैसे कि मक्का में drought stress से पुष्पन कि प्रकिया धीमी हो जाती है।
9. सोयाबीन और गेहूं में सूखे से तनाव कि स्थिति में पुष्पन (physiological maturity) में तीव्रता आ जाती है । सामान्यतः पुष्पन के समय सुखे से तनाव का होना बहुत ही नुकसानदायक होता है।
10. सुखे से तनाव कि वजह से फलदार फसलों जैसे कि आम और लीची के फल चटखने लगते हैं । दाने का साईज छोटा होने लगता है और पानी कि कमी के कारण वह फटने लगता है।
11. अत्यधिक तनाव के कारण कई फसलों कि पैदावार सही नही रहती है। केवल आम और लीची जैसे फलदार फसलो में 30 से 40 फीसद फसल सूखे से तनाव कि वजह से खराब हो जाते हैं।

सूखा स्ट्रैस कम करने के उपाय

1. सूखे से होने वाले तनाव के कारण होने वाले नुकसान को चूँकि कैसे भी दूर नही किया जा सकता है, इसलिए बचाव ही सर्वोत्तम उपाय है । सुखे से तनाव हो, उससे पहले ही बचाव करे।
2. पौधो को सूखा स्ट्रैस से बचाने के लिये आवश्यक जल मुहैय्या कराया जाये उसके लिये जल संचयन और जल संरक्षण के अलावा उपलब्ध जल स्रोत का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये।
3. सूखा स्ट्रैस को कम करने के लिये मृदा में नमी बरकरार रखे । जल अभाव की स्थिति में प्राणरक्षा जल का उपयोग संध्या बेला में करे ताकी बाष्पोत्सर्जन के कारण होने वाली हानी में कमी आय।
4. सूखे से होने वाले स्ट्रैस से बचने और साथ ही मृदा कि नमी बरकरार रखने के लिये खेती में फसल चक्र अपनाये । फसल–चक्र में फसलो का क्रम ऐसा रखा जाये कि, मृदा में घने व रेशेदार जड़ों का विकास हो सके । फसल–चक्र द्वारा जल संरक्षण हेतू सबसे उपयुक्त फसल दलहनी व घास वाली है।
5. सूखा स्ट्रैस से बचने के लिये खेती में जल संरक्षण पर बल दे। पर्याप्त जल संरक्षण के लिये कुछ उपाय इस प्रकार हैं :

- खेती करते समय खेतो से अपवाह (runoff) को नियमित व निर्देशित करे।
- जल बहाव में कमी लाकर भूमी में अंतस्यंदन को बढावा देना, जिससे मृदा की अंतस्यंदन क्षमता बढेगी।
- सिंचाई करते समय फसल की आवश्यकतानुसार, जितनी आवश्यकता हो, उतना ही जल द। साथ ही सिंचाई का जल धीरे – धीरे बहाये।

6. खेती में अधिक गहरी जड़ वाली फसल ले ताकी जमीन मे नमी कम होने पर भी, अधिक गहराई से पौधो को जल उपलब्ध हो जाय और drought stress से बचाव हो सके।

7. सूखा सहने कि क्षमता को हार्मोन के जरीये, विशेष रुप से एब्सिसिक एसिड की क्रिया का नियमन करके बढाया जाये सूखे के तनाव के दौरान एब्सिसिक एसिड जड़ों से पत्तियों कि तरफ बहता है और स्टोमेटा को बंद करने में मदद करता है फलस्वरुप जलबाष्प के तौर पर पानी का ह्रास कम हो जाता है। इसमे एक अन्य संदेशवाहक अणु सायटोकिनिन की भी भूमिका होती है।

8. सूखे से बचने के लिये कपास की दीर्घकालीन उन्नत एवम संकर किस्मे, अरहर की लंबी अवधि वाली जातियां, ज्वार व मक्का की जल्दी पककर तैयार होने वाली स्थानीय व संकर किस्मे लगाई जानी चाहिये।

9. यदी खेत मे या खेत के आसपास आयपोमिया, करंज, रतनजोत आदि के पौधे हो तो उनकी पत्तियो को तोड़कर फसलो की दो कतारो के बीच उन्हे बिछाकर एक अवरोध परत तय की जा सकती है।

10. सूखे के तनाव से बचने के लिये अत्यधिक सूखे से पौधो को बचाने के लिये ड्रिप सिस्टम से जीवन रक्षक जल पौधो को उपलब्ध कराया जा सकता है। ड्रिप सिस्टम से एक तो पानी कम लगता है, दुसरा पेड़ों/पौधो की जड़ों पर लगातार पानी पहुचने से पौधे हरे–भरे बने रहते हैं।

11. सूखा सहने की क्षमता को बढाने के लिये खेती में विभिन्न प्रकार के मल्च या पलवार का उपयोग भी किया जा सकता है। जैसे फसल अवशेष का इस्तेमाल– ये एक तरह की जैविक पलवार या मल्च है। जो, जीवांश कि परत का निर्माण कर फसल की दो कतारो के बीच की जगह पर एक रुकावटी जीवांश परत बनाकर मिट्टी मे से नमी की हानि को रोकता है।

12. प्लास्टिक अवरोधक या प्लास्टिक मल्चिंग का भी प्रयोग सूखे के तनाव से बचने के लिये किया जा सकता है। प्लास्टिक मल्चिंग खेत में पानी की नमी को बनाये रखता है और साथ में बाष्पीकरण को भी रोकता है।

13. अधिक सूखे के तनाव क्षेत्र में हम अस्थायी पलवार (जैसे प्लास्टिक की पतली चादर) के स्थान पर स्थायी पलवार (जैसे बार्क चिप) का इस्तमाल भी कर सकते है जो नमी संरक्षण के साथ–साथ भूमि की उर्वरा व् स्वास्थ्य की वृद्धि करेगा । या फिर बगीचों में स्टोन मल्चिंग का प्रयोग भी किया जा सकता है।

14. झश्ररपीं Growth Regulators की मदद से भी पौधो में सूखे के तनाव को कम किया जा सकता है । इसका इस्तेमाल जड़ के फैलाव को बढ़ा देता है इसलिए पौधे की सूखा सहने की क्षमता बढ़ जाती है, फलस्वरूप drought stress कम हो जाता है।

15. जेनेटिक इंजिनिरिंगकी मदद से पौधों में ऐसे प्रोटीन व् अन्य अणुओं का समायोजन जो तनाव के विरुध्द प्रतिक्रिया को अंजाम देते है। जैसे यू.एस.ए के अयोबा स्टेट विश्वविद्यालय के डा. यानहाई चिन और उनके समूह के अनुसार क्रष्ठ 1 और क्रष्ठ 26 नामक दो अणु सूखे की स्थिति में पौधे की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

16. खेती में नयी (सुखा/गर्मी) प्रतिरोधक प्रजातियों का समावेश करना। उन सभी नए तरीको व् तकनीको को अपनाना जो नमी संरक्षण में सहयोगी हो। जैसे ड्रिप सिस्टम, पलवार इत्यादि।

17. सूखा जैसी स्थिती से किसानो को आगाह करने के लिए मौसम आधारित पूर्वानुमान को उपयोग में लाने से भी drought stress से बचा जा सकता है। कृषि मौसम विज्ञान प्रभाग (आई. एम्. डी) सूखे की चेतावनी समय से पहले और इसका पूर्वानुमान करने के लिए एक जिम्मेदार एजेंसी है।

18. बारामती जैसी जगहों पर जहां खेती के लिए जल की उपलब्धता कम है , एसी जगहों पर औद्योगिक अपशिष्टो से युक्त जल के उचित प्रयोग के लिये इसमे स्वच्छ जल मिलाकर तथा इसमे उपस्थित अशुद्धियो का स्तर कम करके सिंचाई हेतु प्रयोग किया जा सकता है और पौधों को drought stress से बचाया जा सकता है। साथ ही ऐसे फल, फूल और फसल उत्पादन को बढ़ावा दे जिसमे पानी की आवश्यकता बहुत ही कम पड़ती हो।

◆ ◆ ◆

ये संस्थान हमारा है ...

जहाँ खोज खोज पर, तनाव मुक्ति का नारा है।
ये अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, हमारा है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

जलवायु परिवर्तन, विज्ञान से जाँचते हम,
दुष्प्रभाव कृषि उत्पादो पर, है परखते हम,
तकनिकियाँ सुधारों की, चार स्कूलों मे खोजते है।
लक्ष्य हमारा एक ही यहाँ, अन्न सुरक्षा चाहते है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

कही ठंडी–कोहरा, ओला–बारी कही,
दुनिया में चिंता है, तापमान वृद्धि की,
वातावरणीय तनावों को ही, हम सीढ़ी बनाते है।
उन्ही परिमाणों से उन्हे, निष्प्रभ करवाते है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

कही सूखा, तो कही, बाढ़ का हो सामना,
बारिश पे भरोसे की, कोई नहीं संभावना,
शुष्कता तनाव मे, नयी पद्धतियाँ आजमातें है।
यहाँ बुंद बुंद से हम, खुशहाली लाना चाहते है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

कही लवणता, तो कही है जलजमाव,
खनिजों की कमी, कही रसायनों का दुष्प्रभाव,
मृदिय तनाव ज्ञान से, प्रदूषण को निचोड़ देते है।
मिट्टी से सोना उगाने की, कोशिश हरदम करते है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

बढ़ रही है आबादी, बढ़ रही है भूख,
घटती आमदनी से, किसान भी है मूक,
नीति सहयोग शोध से, बदलाव लाना चाहते है।
हम भारतवर्ष को, सुफलाम बनाना चाहते है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।

यहाँ हर खोज पर, तनाव मुक्ति का नारा है।
ये अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन, संस्थान हमारा है।
हाँ! ये संस्थान हमारा है।'

- डा. प्रवीण भि. तावरे

प्रकृति का गहना: अंगूर

खट्टे–मीठे अंगूर लगते है गहना, जैसे प्रकृति ने हर गुच्छा है पहना,
स्वास्थ्य पूरक गुणों का कितना, अनमोल है यह खजाना ।

फल, रस, मदयार्क तथा, किशमिस भी है जाना–माना,
अश्मयुग से ही पूर्वजों ने था, इनकी महिमा को पहचाना ।

शीतोष्ण मुल्क है पसंद इनकी, नरम मौसम मे पैदाइश हुई,
गरम प्रदेश जैसे भारत ने भी, द्राक्ष उत्पाद मे सफलता है पायी ।

कृषि विज्ञान की साथ से, अनुसंधानों ने सहयोगी नीव लगायी,
उपज तकनीकी परिवर्तन से, किसानों की मेहनत रंग लायी ।

बीजधारी किस्मे पुरानी, अनाबेशाही, गुलाबी और भोकरी,
अबीजवाली सबको भायी, थामसन, शरद, नवीन मांजरी ।

विविधता कितनी छिपी है इनमे, सैकड़ो जाती अतरंगी सारी,
स्वाद अलग–अलग है कितने, मधुरता खास सबमे है न्यारि ।

संभालना इनको नहीं है आसान, सवारना होता है लगाए ध्यान,
काफि नहीं सिर्फ पढ़ा ज्ञान, कार्य नियोजन पर खड़ी है कमान ।

रोग ना आये, किट ना खाये, खाद–पानी का जरूरी है उचित प्रावधान,
हर एक बेल जैसे बच्चा भाएँ, तंदुरुस्त बागों से खिलता रहे समाधान ।

पर आबोहवा मे हो रहा है फेर, समस्या यह कुछ संगीन है,
पानी की कमी चारों ओर, परिवेश मे विषतत्वों की भरमार है ।

जोड़कर अंतरंग मिट्टी से अपना, लक्ष्य फसल सुधार का साधना है,
अजैविक तनाव प्रबंधन से धरती को, फल–फूलों से आलंकृत करना है।

- डा. प्रवीण भिमदेव तावरे

गांधीजी के तीन बंदर

गांधीजी के तीन बंदर, करे इशारा चार सिद्धांतों पर,
बुरा ना देखो, बुरा ना सुनो, और कहो ना बुरा किसी प्रहर।
सतर्कता से समझ लो मगर, चौथा एक छिपा है उनके अंदर,
व्यवहार हमारा ना हो गैर, कहे ईमानदारी से काम तू कर।

देखने सुनने कहने में हमारे, कर्म योग का ही ध्यास रहें,
सदा ईमान की हो सेवा, जीवन मूल्यों का हाथ धरें।
आँखों से दुर्गा जी व्हा पे शारदा, और कानों मे लक्ष्मी आस भरें,
नवरात्रि की सजगता से, भ्रष्टाचारी दशानन का संहार करें।

अविश्वास का अंधेरा मिटाने, हर दिल में को जाग्रति जागर हो,
सपनों के सुशासन का पूर्ण–चंद्रमा, हिन्द सागर में ओज़ल हो।
भाव विचार वाणी और क्रिया हमारी, एक दिशा में चरैवित हो,
भारत वर्ष का हर सतर्क जन, सत्यमेव जयते की पहचान हो।

- डा. प्रवीण भिमदेव तावरे

जीने की हसरत.....

जिंदगी बंजर लग रही है,
मंजिल का कोई पता नहीं
फिर भी जीने की स्वाहिश छोड़ी नहीं।

हर रोज यह सोच के निकलता हूँ की,
आज मंजिल का रास्ता प लूँगा,
मगर हर वक्त की तरह नसीब बीच में आ जाता है।

ना जाने क्यों रूठा है ओ मुझसे,
क्या काश्मकश हैं दोनों में जो है की,
मीठ नही प रही है।

अब ऐसा लग रहा है की मंजिल एक है,
लेकिन रास्ते अलग–अलग है।

यह सोच के फिर मंजिल की और चलता हूँ
की आज फिर मिलेंगे.....
आज फिर मिलेंगे.....

प्रविण विलास माने

संकल्प से सिद्धि

नयी योजना, नयी पहल, नए भारत का नया आंदोलन,
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।
भारत छोड़ो संकल्प किया था, अगस्त 1942 में,
आजादी की किरणों से जो, सिद्ध हुआ 1947 में ।।
गांधीजी के शब्दों में थी ताकत,
लड़ेंगे कहा था, मरते दम तक,
स्वतंत्रता के सेनानी, थे प्रेरित,
वो देखने तिरंगा ऊंचा, गर्व से लहरत ।। 1 ।।
नयी योजना, नयी पहल, नए भारत का नया आंदोलन,
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।
नवनिर्माण का आगाज हुआ है, 75 वी वर्षगाठ में,
समृद्ध भारत का सपना, होगा पूरा पाँच सालों में ।।
स्वच्छ, सुंदर, साक्षर भारत,
गरीबी भ्रष्टाचार मुक्त भारत,
आतंक–सांप्रदायिकता से राहत,
वो जाती–भेदभाव मुक्त भारत ।। 2 ।।
नयी योजना, नयी पहल, नए भारत का नया आंदोलन,
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।
उद्देश्य नए बदलाव लाने का, जुड़ जाए हम योजना में,
उठो जवानों बन्ध जाए अब, सकल वचन निभाने में ।।
चाहते मोदीजी, सबका साथ,
प्रयासों की, है जरूरी बरसात,
2022 तक, सफलता होगी हाथ,
वाणी उनकी, है सबके मनकी बात ।। 3 ।।
नयी योजना, नयी पहल, नए भारत का नया आंदोलन,
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।
कमान संभाली है, किसान कल्याण मंत्रालय ने,
गूंज उठी प्रतिज्ञा, कृषि अनुसंधान परिषद में ।।
नियासम का भी, संकल्प है प्रतिक्षित,
किसान हमारे, हो जाएँ तनाव रहित,
गाव मेरा गौरव से, जन हो शिक्षित,
स्ट्रैस प्रबंधन ज्ञानसे, भूमि हो जाए हरित ।। 4 ।।
नयी योजना, नयी पहल, नए भारत का नया आंदोलन,
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।
संकल्प से सिद्धि योजना, नया अगस्त क्रांति आंदोलन ।

–डा. प्रवीण भिमदेव तावरे

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

भाकृअनुप
ICAR

Agrisearch with a human touch

राअस्ट्रैप्रसं
NIASM

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान

(समतुल्य विश्वविद्यालय)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

मालेगांव, बारामती 413 115, पुणे, महाराष्ट्र, भारत
दूरध्वनी : 02112-254057, फैक्स : 02112-254056

ICAR-National Institute of Abiotic Stress Management

(Deemed to be University)

Indian Council of Agricultural Research

Malegaon, Baramati 413 115, Pune, Maharashtra, India
Phone : 02112-254057, Fax : 02112-254056
Web : www.niam.res.in

Printed at :
Flamingo Business Systems, 19, Laxminagar Commercial Complex No. 1, Shahu College Road, Pune 411 009. Tel. : 020-24214636, 09049400137
Email : flamingo.b.s@gmail.com, srgupta.tej@gmail.com